# आर्यवीर बौद्धिक

## आर्यवीर एवं शाखा नायक श्रेणी

लेखक

**डॉ. देवव्रत आचार्य**

सम्पादक

ब्रह्मचारी अरुण कुमार

(आर्यवीर)

प्रकाशक

**अरुणोदय वैदिक साहित्य प्रकाशन**

आर्ष गुरुकुल नर्मदापुर होशंगाबाद (म.प्र.)

# आर्यवीर बौद्धिक

## आर्यवीर एवं शाखा नायक श्रेणी

लेखक

**डॉ. देवव्रत आचार्य**

सम्पादक

ब्रह्मचारी अरुण कुमार

(आर्यवीर)

प्रकाशक

**अरुणोदय वैदिक साहित्य प्रकाशन**

आर्ष गुरुकुल नर्मदापुर होशंगाबाद (म.प्र.)

**प्रकाशक**

अरुणोदय वैदिक साहित्य प्रकाशन
आर्ष गुरुकुल नर्मदापुर
होशंगाबाद मध्यप्रदेश
४६१००१ आर्यावर्त देश

**प्रथम संस्करण :**
२०००
दिसंबर १९९५ (मार्ग शीर्ष २०५१ वि.सं.)

**मूल्य :** ६ रुपये

**मुद्रक :**
बॉक्स कॉरोगेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिन्टर्स,
औद्योगिक क्षेत्र गोविन्दपुरा, भोपाल फोन : ५८७५५१

**पुस्तक प्राप्ति स्थान :**
१) आर्ष गुरुकुल नर्मदापुर होशंगाबाद (म.प्र.) ४६१००१
२) सतीश खण्डेलवाल, १५ थाना रोड, न्यू मार्केट.
टी.टी. नगर, भोपाल ४६२००३
३) श्री आदित्यपालसिंह, एफ ५/५२ चार इमली,
भोपाल (म.प्र.) ४६२०१६

# सम्पादकीय

बड़े हर्ष का विषय है कि आर्य वीर बौद्धिक पुस्तक प्रकाशित हो रही है। आर्य वीर दल आर्य समाज की युवा इकाई है, जिसका संचालन सार्वदेशिक स्तर पर पूज्य डॉ. देवव्रत जी आचार्य करते हैं। आर्य वीर दल में जहाँ एक ओर सभी प्रकार के व्यायाम एवं शस्त्र अस्त्र प्रशिक्षण द्वारा आर्य वीरों को प्रशिक्षित किया जाता है वहीं पर दूसरी ओर उन्हें मानसिक रूप से परिपक्व एवं सुसंस्कारित करने के लिये बौद्धिक विचार भी दिये जाते हैं।

इसी लक्ष्य की पूर्ती में पूज्य डॉ. देवव्रत आचार्य जी द्वारा लिखी यह पुस्तक आर्य वीर बौद्धिक आपके हाथों में है। इस पुस्तक के छपाई हेतु हमें भोपाल के श्री माधुरीशरण जी अग्रवाल जी से २०००/- रु. का दान प्राप्त हुआ एवं श्री सतीश जी खण्डेलवाल जी ने भी हमें छपाई में आधा व्यय देकर उपकृत किया है। तथा गुजरात से श्री दिनेशभाई सुखडिया ने भी हमें १००० रु. की सहायता प्राप्त करा दी एतदर्थ हम इन सभी महानुभावों के हृदयपूर्वक आभारी हैं।

अरुणोदय वैदिक साहित्य प्रकाशन के माध्यम से हमारा यत्न रहेगा कि देश समाज एवं धर्म के लिये बलिदान होने वाले महापुरुषों की लघु जीवनियाँ जो आर्य वीरों के चरित्रनिर्माण में उपयोगी सिद्ध होंगी प्रकाशित करते रहेंगे। एतदर्थ दयानन्द सेवाश्रम संघ (म.प्र.) के महामन्त्री श्री जितेन्द्र जी आर्य ने हमें सहयोग का वचन दिया है।

ब्रह्मचारी अरुणकुमार
(आर्यवीर)
आर्ष गुरुकुल नर्मदापुर होशंगाबाद
मध्यप्रदेश ४६१००१

# भूमिका

विचार मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। व्यक्ति जैसा चिन्तन करता है वैसा वाणी से बोलता है, जैसी वाणी बोलता है, वैसा करता है और जैसा करता है वैसा ही बन जाता है। किसी को बदलना है तो उसके बाह्य स्वरूप को न बदलकर केवल उसके विचारों में ही परिवर्तन कर दिया जाए तो शेष कार्य वह अपने-आप कर लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

विचार शक्ति की गति यौवनावस्था के प्रारम्भ में अत्यधिक होती है। इस समय बालक किसी को भी अपना आदर्श मानकर उसकी ओर आकर्षित होने लगता है। इस समय उसे सही मार्गदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता है, अन्यथा भ्रमित होकर वह अपने मार्ग से विचलित हो सकता है।

सार्वदेशिक आर्यवीर दल की प्रथम-द्वितीय श्रेणी के आर्यवीरों के लिए यह पाठ्यपुस्तक इसी तथ्य को ध्यान में रखकर लिखी गई है। प्रशिक्षण शिविरों में जहाँ शारीरिक क्षमता का विकास, अनुशासन एवं आत्मरक्षण का प्रशिक्षण दिया जाता है, वहीं सन्तुलन बनाये रखने के लिए उनका बौद्धिक विकास भी अनिवार्य है। बल एवं बुद्धि दोनों से समृद्ध होकर ही व्यक्ति जीवन में प्रगति कर सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में आर्यवीर दल के उद्देश्य, आर्यवीर के कर्तव्य, आर्य-सिद्धान्त, चरित्र, अनुशासन, स्वास्थ्य आदि का ज्ञान सरल भाषा में लिपिबद्ध किया गया है, जिससे आर्यवीर शरीर से सुदृढ़, विचारों में प्रबुद्ध और कर्तव्य-पथ पर अडिग बन सकें।

—डॉ० देवव्रत आचार्य

ओ३म्

# आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

# विषय सूची

पृष्ठ संख्या

# १. आर्यवीर दल उद्देश्य, आवश्यकता व आदर्श

आर्य शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ व्यक्ति' है। निरुक्त में इसका अर्थ 'ईश्वर-पुत्रः' किया है। जो ईश्वर का भक्त हो और उसकी आज्ञा का पालन करे, उसे आर्य कहते हैं। आर्य के आठ लक्षण हैं—

**ज्ञानी, तुष्टश्च, दान्तश्च, सत्यवादी, जितेन्द्रियः।**
**दाता, दयालु, नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः ।।**

अर्थात् ज्ञान (विद्या), सन्तोष, मन पर नियन्त्रण, सत्यभाषण, इन्द्रियों को वश में करना, दान, दया और विनम्रता ये आठ गुण आर्य में होने चाहिएँ। यह शब्द संस्कृत की 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'गति करना' होता है। प्रगतिशील व्यक्ति को ही आर्य कहते हैं।

'वीर' शब्द 'वीर विक्रान्तौ' धातु से बना है। जो व्यक्ति पराक्रमी हो अथवा जिसे सम्मुख देखकर शत्रु को कँपकँपी छूट जाए उसे वीर कहा जाता है।

'दल' शब्द सङ्गठन का वाचक है अथवा दलनार्थक 'दल' धातु से इसकी व्युत्पत्ति होती है। इस प्रकार आर्यवीर दल शब्द का अर्थ हुआ 'श्रेष्ठ चरित्रवान वीरों का सङ्गठन'। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहले आर्य बनना आवश्यक है, अन्यथा केवल वीरता सज्जन लोगों की रक्षा के स्थान पर उन्हें पीड़ित भी कर सकती है। अच्छे और शूरवीर व्यक्ति भी यदि सङ्गठन में नहीं रह सकते तो उनकी ही विजय होगी, ऐसा कहना कठिन है। इसलिए आर्यवीर में बुद्धि एवं बल, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के गुणों का समावेश तथा उत्कृष्ट श्रेणी का अनुशासन होना अनिवार्य है।

## आर्यवीर दल का उद्देश्य :

(१) वैदिक धर्म, आर्य-संस्कृति एवं आर्य-सभ्यता की रक्षा, प्रचार और प्रसार करना।

(२) समस्त उचित उपायों द्वारा आर्यजाति में क्षात्रधर्म का प्रचार, प्रशिक्षण देकर स्वात्म-रक्षण और राष्ट्र-रक्षार्थ किसी भी विपत्ति का सामना करने के लिए सन्नद्ध रहना।

(३) जनता की सेवा के लिए आर्यवीरों को प्रशिक्षित करना।

संक्षेप में संस्कृति रक्षा, शक्ति सञ्चय और सेवाकार्य, आर्यवीर दल का उद्देश्य है।

## आवश्यकता :

यह प्रश्न पूछना वैसा ही है जैसे कोई किसी माता से पूछे कि तुम्हें पुत्र की क्या आवश्यकता है? आर्यसमाज हमारी मातृ संस्था है, महर्षि स्वामी दयानन्द गुरु, आचार्य और पितृतुल्य पथ-प्रदर्शक हैं। जिस माता की पवित्र गोद में वेद-मन्त्रों की लोरियाँ सुनकर हमें शान्ति मिली, स्वामीजी के शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के सन्देश ने हममें नव-जीवन का सञ्चार किया, क्या यह उचित है कि उस माता की गोद बिना पुत्र के सूनी ही रह जाए।

प्रत्येक धार्मिक एवं राजनैतिक संगठन की युवा इकाइयाँ बनी हुई हैं, जिनसे मंजे हुए कार्यकर्त्ता बड़े होकर अगले सङ्गठन का कार्य सँभालते हैं, परन्तु सैकड़ों डी०ए०वी० विद्यालयों एवं महाविद्यालयों तथा अनेक गुरुकुलों के होते हुए भी आर्यसमाज में सर्वत्र कार्यकर्त्ताओं का अकाल-सा प्रतीत हो रहा है। किसी संस्था के जीवित रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें नया रक्त, जो उसी वर्ग का हो आता रहे।

अच्छे कार्यकर्त्ताओं के अभाव में अन्य सङ्गठनों के व्यक्ति योजनाबद्ध तरीके से आर्यसमाज के पदाधिकारी बन बैठे और ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के विपरीत अन्य अवैदिक कार्य करने में प्रवृत्त हो रहे हैं।

आर्यवीर दल वह फैक्ट्री है जहाँ से चरित्रवान्, बलिष्ठ, सुसंस्कृत और अनुशासित युवकों का निर्माण होता है। इन्हीं तपे हुए नवयुवकों के कंधों पर आर्यसमाज का भविष्य निर्भर है।

आर्यसमाज के अधिकारी एवं सदस्यों के बच्चों को भी आर्यसमाज में आकृष्ट करने एवं उन्हें आर्य बनाने का एक ही उपाय है कि प्रत्येक आर्यसमाज में आर्यवीर-दल की स्थापना अनिवार्य की जाए। आर्यसमाजों की ओर से व्यायामशालाओं, पुस्तकालयों के अतिरिक्त बच्चों की वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ, क्रीड़ा-स्पर्धाएँ तथा अन्य सेवा के कार्य आर्यवीर-दल के माध्यम से करवाने चाहिएँ।

अनेक सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक सङ्गठन अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए युवकों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। अनेक प्रादेशिक संस्थाओं का गठन हो रहा है। कुछ सङ्गठन देश से पृथक होने एवं निर्दोष लोगों की बलि लेने पर तुले हुए हैं। कुछ सारे देश को ईसा की भेड़ों या इस्लाम के झण्डे के नीचे लाने का स्वप्न देख रहे हैं। कुछ सङ्गठन सामाजिक होते हुए भी राजनीति चला रहे हैं। केवल आर्यसमाज और आर्यवीर-दल ही ऐसा सङ्गठन है जो अज्ञान, अन्याय और अभाव का मुकाबला करने के लिए कृतसंकल्प है, जो मनुष्यमात्र का हितैषी है, जिसमें राष्ट्रियता कूट-कूट कर भरी हुई है, जाति-पाँति, छुआ-छूत का जहर जिसकी रगों में विद्यमान नहीं है, संस्कृति-रक्षा, शक्ति-सञ्चय एवं मानवमात्र की सेवा करना ही जिसका आदर्श है, जिसका खुला संविधान एवं व्यावहारिक जीवनदर्शन है, **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** 'सारे संसार को श्रेष्ठ बनाओ' ही जिसका उद्घोष है और देव दयानन्द के सपनों का 'आर्यराष्ट्र' निर्माण करने का अरमान है।

आचार्य धर्मपाल आर्य
महामंत्री
आर्य वीर दल मुम्बई

# २. आर्यवीर-दल का ध्वज

ध्वज किसी भी राष्ट्र, जाति या सङ्गठन की भावनाओं का प्रतीक होता है, जिससे उन्हें प्रेरणा मिलती है।

## आर्यवीर-दल के ध्वज का स्वरूप :

(१) भित्तिका अरुण वर्ण की।

(२) लम्बाई पृथिवी के समानान्तर एवं चौड़ाई ध्वज दण्ड के समानान्तर का अनुपात ३:२। आकृति आयताकार।

(३) मध्य में सूर्यमण्डल।

(४) सूर्यमण्डल के मध्य में 'ओ३म्' लिखा हुआ।

(५) सूर्यमण्डल के नीचे एक-दूसरे को काटती हुई दो तलवारें।

(६) वस्त्र शुद्ध स्वदेशी।

(७) ध्वजदण्ड सफेद रंगा हुआ।

## अभिप्राय :

ध्वज का रङ्ग अरुण (उगते हुए सूर्य का वर्ण) तेजस्विता का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त इसके साथ बलिदान की भावना भी जुड़ी हुई है। मध्यकाल में राजदूत योद्धा केसरिया रङ्ग के वस्त्र पहनकर ही जौहर व्रत का अनुष्ठान करते थे। यह रङ्ग अग्नि का भी है।

ध्वज के मध्य में सूर्य का चिन्ह प्रकाश का प्रतीक है। सूर्य से ही पृथिवी पर प्राणिमात्र का जीवन सम्भव है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर कर सारे जग को आलोकित करता है, उसी भाँति इस पताका को हाथ में लेकर आर्यवीर सारे संसार में ज्ञान का प्रकाश करें, यह अभिप्राय है। इसका अर्थ यह भी है कि सूर्य के समान नियमबद्धता, परोपकार, गति एवं आत्म-प्रकाश प्रत्येक आर्यवीर

में होना चाहिए तभी वह अन्य लोगों को आकर्षित कर सकता है। सूर्य संसार का चक्षु है, इसी भाँति आर्यवीर भी लोगों के पथ-प्रदर्शक बनें।

सूर्य मण्डल के मध्य में ओङ्कार का चिह्न आस्तिकता का प्रतीक है। 'ओ३म्' यह परमेश्वर का मुख्य नाम है। अन्य नाम गुणों के आधार पर हैं। इसका अर्थ व्यापक और रक्षक है। प्रत्येक आर्यवीर ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर बुराइयों से बचे और उसे रक्षक जान निर्भय रहे तथा उसका स्मरण भी करे यही इसका भाव है।

सूर्यमण्डल के नीचे परस्पर एक-दूसरे को काटती हुई तलवारें शक्ति का प्रतीक हैं। हम केवल शान्ति के ही पुजारी नहीं हैं, अपितु—

**अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।**

**इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि।।**

**शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते।**

शस्त्र और शास्त्र, ब्रह्म और क्षत्र दोनों की प्राप्ति ही हमारा लक्ष्य है, क्योंकि विना शस्त्र शास्त्र निष्फल रहते हैं।

**जहाँ शस्त्र बल नहीं शास्त्र पछताते या रोते हैं।**

**ऋषियों को भी सिद्धि तप से तभी मिलती है,**

**जब पहरे पर स्वयं धनुर्धर राम खड़े होते हैं।** —दिनकर

ध्वज का वस्त्र स्वदेशी इसलिए है कि हम स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने की ओर प्रवृत हों।

ध्वज का दण्ड सफेद वर्ण का इसलिए है कि कुल मिलाकर हम शान्ति चाहते हैं। सफेद रङ्ग शान्ति का प्रतीक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यवीर-दल के ध्वज में आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य (छठा नियम), शारीरिक (तलवार), आत्मिक (ओ३म्), सामाजिक (सूर्य—परोपकार का चिह्न) अन्तर्निहित हो रहा है।

# ३. आदर्श आर्यवीर

भारतभूमि रत्नगर्भा है। इस पुण्य भूमि में जन्म लेने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं।[1] इसके विश्वविद्यालयों में आकर समस्त भूगोल के निवासी ज्ञान-विज्ञान का रसास्वादन कर अपना मनुष्यजन्म सार्थक समझते थे। वे ऋषि, महर्षि, विद्वान, ब्राह्मणों के चरणारविन्द में बैठकर अपने चरित्र का निमार्ण करते हुए अपना अहोभाग्य मानते थे।[2]

रामायण एवं महाभारत आर्य-संस्कृति की अनुपम निधि हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी का आदर्श आज भी कोटि-कोटि मनुष्यों को प्रेरित कर रहा है। कल राजतिलक होनेवाला है, यह जानकर भी राम के मन में अहंकार नहीं है, वे समुद्र के समान गम्भीर बने रहते हैं। अगले दिन चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा मिलती है तब भी वे शान्त, धीर और प्रसन्नमुख हैं। **"सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता"** यह उक्ति उनपर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। संसार में ऐसा उदाहरण ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। भरत ननिहाल से आकर राम को वापस अयोध्या में लाने के लिए सेना लेकर वन में जाते हैं। दोनों की भेंट होने पर भरत राम से अयोध्या का राजसिंहासन सँभालने का आग्रह करते हैं और स्वयं वन में रहने के लिए कृतसंकल्प हैं।

**राजतिलक की गेंद बनाकर खेलन लगे खिलाड़ी।**
**इधर राम और उधर भरत दोनों ने ठोकर मारी।।**

अन्य जातियों का इतिहास पढ़ जाइए, उनका सारा इतिहास सत्ता-प्राप्ति के लिए भाई, पिता, पुत्र के रक्त से रंजित मिलेगा। संसार के इतिहास में ऐसा

---

१. **गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।**
**स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयाः पुरुषाः सुरत्वात्।।** —विष्णुपुराण

२. **एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।** —मनुस्मृति

उदाहरण अन्यत्र मिलना दुष्कर है, जहाँ चौदह वर्ष तक खड़ावों ने राज्य किया हो। महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने रामायण लिखकर अपनी लेखनी को अमर कर लिया है और यह स्वाभाविक ही है—

**राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।**
**कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।**

रावण द्वारा सीता का अपहरण किये जाने पर सीता द्वारा विमान से गिराये गये आभूषणों को सुग्रीव द्वारा दिखलाने पर श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण से कहते हैं—'भाई लक्ष्मण! मैं शोक-संतप्त होने के कारण इन आभूषणों की ठीक पहचान करने में असमर्थ हूँ, आप इन्हें पहचानें।' यह सुनकर लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया वह आर्यवीरों के चरित्र की पराकाष्ठा है—

**नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।**
**नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।**

"हे भाई राम! मैं (केयूर) बाजू के आभूषण एवं कानों के कुण्डलों को नहीं पहचान सकता, माता सीता के पैरों के आभूषण (नूपुर) को ही मैं जानता हूँ, क्योंकि मैं प्रतिदिन प्रातः उनके पैरों में झुककर प्रणाम किया करता था।" वीर लक्ष्मण का यह आदर्श अद्वितीय है।इसी अखण्ड ब्रह्मचर्य के बल से उन्होंने मेघनाद जैसे शूरवीर योद्धा पर विजय पायी थी।

महर्षि कण्व के आश्रम में दुष्यन्त का पुत्र वीर बालक भरत बचपन में ही शेरों के बच्चों को पकड़कर उनके दाँत गिनता और बनैले सूअरों को पूँछ से घसीट कर उन्हें वृक्षों से बाँध देता था। यही बालक आगे जाकर चक्रवर्ती राजा बना। उसी के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

योगिराज श्रीकृष्ण से सभी देशवासी परिचित हैं। उन्होंने युवावस्था के प्रारम्भ में अपने माता-पिता को बन्दी बनानेवाले अत्याचारी और क्रूर मामा कंस को मार गिराया। राजसिंहासन पर उनके पिता उग्रसेन को बिठाया। पाण्डवों को फिर से उनका राज्य लौटा देने के लिए स्वयं दूत बनकर दुर्योधन के दरबार में गये। दुर्योधन को बहुविधि समझाया, परन्तु उसने बिना युद्ध के सूई की नोंक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया और श्री कृष्णजी को बन्दी बनाने का

षड्यन्त्र रचा। परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ। युद्धभूमि में अर्जुन द्वारा भीरुता दिखाने पर उन्होंने गीता का अमर उपदेश दिया। आज संसार की सभी समृद्ध भाषाओं में गीता का अनुवाद हो चुका है। श्रीकृष्णजी की रणनीति एवं राजनैतिक कौशल से ही पाण्डवों की विजय हुई। अपने समय में वे योग, राजनीति एवं बल में सर्वाग्रणी थे। उनके पास सुदर्शन चक्र नामक अद्वितीय प्रक्षेपास्त्र था, जो सूर्य की किरणों से उत्पन्न विद्युत द्वारा चलता था और शत्रु को मारकर पुनः वापस लौट आता था। सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी अभिमान उनको छू तक नहीं गया था। महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने देश-देशान्तर से आये ऋषि, महर्षि, राजा, महाराजा और विद्वान् अतिथियों के पैर धोने और सेवा-कार्य का उत्तरदायित्व स्वयं लिया। यज्ञ के अन्त में जब सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति का सम्मान करने का प्रश्न आया तो भीष्म पितामह ने उन्हीं के नाम की संस्तुति की।

राजनीति के अद्वितीय विद्वान् महात्मा चाणक्य का नाम कौन नहीं जानता, जिन्होंने अपने बुद्धिबल से अन्यायी राजा नन्द को मगध के राजसिंहासन से उतारकर चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठापित किया। चन्द्रगुप्त के समय भारतवर्ष की सीमाएँ काबुल-कन्धार तक थीं। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापति सैल्यूकस ने भारत पर चढ़ाई की, परन्तु वह पराजित हुआ और उसने चन्द्रगुप्त से सन्धि करके अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी उसके साथ कर दिया तथा दहेज के रूप में अपने राज्य का कुछ भाग भी देकर गया। यह सब चाणक्य की बुद्धि एवं चन्द्रगुप्त के शौर्य का ही चमत्कार था। उनकी अनुपम कृति 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' आज भी राजनीतिज्ञों का मार्गदर्शन करती है।

(महाराणा प्रताप का नाम यहाँ के बच्चे-बच्चे को याद है। उनके दादा महाराणा संग्रामसिंह के शरीर पर अस्त्र-शस्त्रों के अस्सी घाव थे) युद्ध में उनकी एक आँख तथा एक भुजा भी जा चुकी थी फिर भी मातृभूमि की रक्षा के लिए विदेशी आक्रान्ता बाबर से लड़ते हुए शहीद हो गये। जिस समय अन्य राजपूत राजाओं ने अकबर को अपनी लड़कियाँ देकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, उस समय भारत माँ का यह वीर सपूत, सिसौदिया वंश की गौरव-पताका को उन्नत किये हुए अकबर से लोहा लेता रहा। जंगलों की खाक छानते हुए घास-फूँस की रोटियाँ खानी स्वीकार कीं, परन्तु मेवाड़ का मस्तक नीचा न होने दिया। प्रताप

का नाम सुनकर आज भी आर्य-सन्तान का सीना गर्वोन्नत हो जाता है।

अकबर द्वारा चित्तौड़ के किले की घेराबन्दी करने पर राजपूत स्त्रियों ने जौहर-व्रत का आश्रय लिया। वीर राजपूत केसरिया बाना पहनकर भूखे सिंह की भाँति यवनों पर टूट पड़े। वीरवर फत्ता (प्रतापसिंह) को जिनके अभी भली-भाँति मूँछें भी नहीं आयीं थीं, सेनापति बनाया गया। माता ने आशीर्वाद दिया, बहनों ने तिलक किया। माता ने न केवल आशीर्वाद दिया अपितु स्वयं तथा अपनी पुत्रवधु (प्रतापसिंह की धर्मपत्नी) जिसका कुछ समय पहले ही पाणिग्रहण संस्कार हुआ था, जिसके हाथों की मेंहदी अभी मिट भी नहीं पाई थी, के साथ केसरिया बाना पहनकर शत्रु-सैन्य को गाजर-मूली की भाँति काटती हुई मातृभूमि की रक्षार्थ बलिदान हो गई। वीर फत्ता भी द्विगुणित उत्साह से अकबर के मदमस्त हाथियों की सूँड अपनी तलवार के प्रबल प्रहार से कदली-स्तम्भ की भाँति काटने लगे। हाथी चिंघाड़ मार-मारकर अपनी ही सेना को रौंदते हुए भागे। अकबर ने अपनी योजना विफल होते देखकर तीन हजार हाथियों के साथ पुनः चित्तौड़गढ़ के किले के पहले फाटक पर धावा बोल दिया। वीर जयमल, फत्ता वीरतापूर्वक लड़ते हुए देश के काम आये। चित्तोड़ को विजय करके अकबर ने उन वीरों की स्मृति में जयमल और फत्ता की हाथियों पर बैठी हुई मूर्ति किले के दरवाजे पर लगवाई।

जिस समय यवनों के त्रास से भारत भूमि संत्रस्त होकर 'त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!' कर रही थी चारों ओर हिन्दुओं के मन्दिरों को भूमिसात् करके उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई जा रही थीं, माता-बहिनों की लाज लूटी जा रही थी, चोटी और यज्ञोपवीत उतारकर बलात् इस्लाम धर्म अपनाने को बाध्य किया जा रहा था, उस समय अत्याचार की प्रबल आँधी की चट्टान बनकर उसका विनाश करने के लिए वीर शिवाजी ने संग्राम का बिगुल बजाया। गौ, ब्राह्मण व आर्य-संस्कृति की फिर से रक्षा हुई। मन्दिरों में शंख-ध्वनि और वेदमन्त्रों का गान पुनः गूँजने लगा। आर्य-आति के गौरव वीर शिवाजी के लिए ठीक ही कहा है—

**राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यो,**<br>
**स्मृति-पुराण राखे, वेद-विधि सुनी मैं।**<br>
**राखी राजपूती, रजधानी राखी राजन की,**

धरा में धर्म राख्यो, गुण राख्यो गुणी में।

'भूषण' सुकवि जीति हद मरहट्टन की,

देश देश कीरति बखानी तव सुनी में।

साह के सपूत शिवराज, समसेर तेरी,

दिल्ली दल दाबिकै,दिवाल राखी दुनी में।

वीर बालक हकीकत का बलिदान कौन भुला सकता है। जिसने बाल्यावस्था में धर्म रक्षार्थ सिर कटवाना मंजूर किया, परन्तु चोटी और जनेऊ को त्यागकर मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया। पिता भागमल और माता कौरां देवी का वह इकलौता पुत्र धर्म की रक्षार्थ हँसते-हँसते बलिदान हो गया। आज भी उसकी स्मृति में प्रतिवर्ष बसन्त पंचमी का मेला लगता है।

**शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।**

**वतन पर मरने वालों का यही नामो-निशाँ होगा।।**

सरहिन्द के नवाब द्वारा आक्रमण किये जाने पर गुरु गोविन्दसिंहजी ने चमकौर के किले में आश्रय लिया, परन्तु नवाब द्वारा सुदृढ़ घेराबन्दी किये जाने के कारण बाहर से खाद्य सामग्री का पहुँचना बन्द हो गया। सैनिक भूखों मरने लगे। जब सैनिक निरुत्साहित हो गये तो गुरु गोविन्दसिंह ने बड़े पुत्र अजीतसिंह, जिसकी आयु सोलह वर्ष की थी, को रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा दी। वीर बालक आज्ञा सुनते ही तलवार लेकर शत्रुदल पर टूट पड़ा और लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् गुरुजी ने दूसरे बालक जुझारसिंह को रणभूमि में जाने का आदेश दिया। उसने कहा कि "जरा मैं पानी पी लूँ। मुझे प्यास लगी हुई है।" इस पर गुरुजी ने कहा "तुम्हारे भाई के पास खून की नदियाँ बह रही है।" वहाँ पर अपनी प्यास बुझा लेना।" जुझारसिंह भी रणभूमि में काम आया। गुरु गोविन्दसिंह वेष बदल कर निकल पड़े।

उनके दो छोटे पुत्र जोरावर सिंह और फतहसिंह अपने ही लोगों के षड्यन्त्र द्वारा पकड़े गये। सरहिन्द के नवाब ने उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा। उनके द्वारा मना करने पर उन्हें जिन्दा ही किले की दीवारों में चिनवा

दिया गया। गुरु गोविन्दसिंह को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने संगत से कहा—

**इन पुत्रन के कारणे वार दिये सुत चार।**

**चार मरे तो क्या हुआ जीवित कई हजार।।**

गुरु-पुत्रों का बलिदान रंग लाया। वीर बन्दा वैरागी ने इस अपमान का बदला लिया। उन्होंने सरहिन्द की ईंट से ईंट बजा दी। आर्य-जाति में बन्दा वैरागी जैसे शूरवीर योद्धा विरले ही हुए हैं। उनके अचूक तीरों की मार से मुसलमान योद्धा रणभूमि में पीठ दिखाकर भाग खड़े होते थे। अपने बल-पौरुष से अत्यल्प समय में ही इस वीर ने पश्चिमी पञ्जाब से लेकर यमुना तक का क्षेत्र यवनों के आंतक से मुक्त करके गुरु गोविन्दसिंह के कार्य को पूरा किया, परन्तु फूट आर्यजाति का पुराना रोग है और इसी ने बन्दा बहादुर को पकड़वा दिया। उसके साथ छह सौ (६००) अन्य वीर भी पकड़े गये। इन सबको इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा गया। मना करने पर दिल्ली में चाँदनी चौक के स्थान पर तलवार से प्रतिदिन सौ वीरों के सिर काटे जाने लगे। अन्त में वीर बन्दा की बारी आई। उसके सामने उसके कलेजे के टुकड़े छोटे बालक को मारकर उसे बन्दा वैरागी के मुंह पर मारा, पश्चात् लोहे की गर्म-गर्म सलाखों से उसका मांस नोचा गया, परन्तु वीर बन्दा ने आह तक नहीं की और शान्त मुद्रा में बैठे रहे। इसके बाद उन्हें हाथी के पैर से कुचलवाया गया और इस वीर ने मातृभूमि को अन्तिम प्रणाम करके संसार से विदा ली। यह अत्याचार की पराकाष्ठा थी। बन्दा वैरागी का बलिदान ईसामसीह के बलिदान से बढ़कर है, जिसे आर्यजाति कभी भी भुला नहीं सकेगी।

मुसलमानों के साम्राज्य का पतन होने के पश्चात् अंग्रेजों का आगमन हुआ। ये लोग व्यापार के बहाने इस देश में आये और कूटनीति से देश के शासक बन बैठे। उन्होंने यहाँ की संस्कृति को ही सदा के लिए मिटाने का षडयन्त्र प्रारम्भ किया। मुसलमानों का राज्य सात सौ वर्ष रहा, परन्तु उनकी तलवार भारतीय संस्कृति को नहीं मिटा सकी। इधर अंग्रेजों ने इसपर कुठाराघात करना आरम्भ किया तो बूढ़े भारत की धमनियों में फिर से नये रक्त का सञ्चार हुआ। जिसका परिणाम १८५७ ई० का स्वतन्त्रता संग्राम है। वीर मंगल पाण्डे ने स्वतन्त्रता युद्ध

के लिए सर्वप्रथम अपने जीवन की आहुति देकर क्रान्ति का सूत्रपात किया। नाना फड़नवीस, ताँत्या टोपे, महारानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्ति का बिगुल बजाया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। अपने बच्चे को पीठ पर बाँधकर घोड़े की लगाम मुँह में दबाकर दोनों हाथों से तलवार चलाती हुई इस वीरांगना ने अनेक अंग्रेज सैनिकों को यमपुर भेज दिया और वीरतापूर्वक लड़ते हुए शहीद हुई। अंग्रेज अफसर कर्नल हैवलाक के शब्दों में "यदि वह यूरोप के देशों में पैदा होती तो जॉन ऑफ आर्क के समान उसकी सर्वत्र पूजा की जाती।"

क्रान्ति की यह चिंगारी उस समय दबा दी गई, परन्तु तब भी भीतर-ही-भीतर सुलगती रही। देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन लाल, राजेन्द्र लाहिड़ी, शहीद भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव और अनेक क्रान्तिकारी वीरों ने फाँसी के फन्दे को जयमाला की भाँति चूमकर अपने-आपको सदा के लिए अमर कर लिया। वीर सावरकर ने अण्डमान में कोल्हू चलाया। शचीन्द्र नाथ सान्याल दीर्घकालीन भूख हड़ताल करते हुए स्वर्ग सिधारे। चन्द्रशेखर आजाद जोकि क्रान्तिकारी दल के नेता थे इलाहाबाद स्थित अल्फ्रेड पार्क में मुकाबला करते हुए शहीद हुए। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद-हिन्द-सेना बनाकर देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए लड़ाई लड़ी। शहीद ऊधमसिंह ने इंग्लैंड में जाकर जलियाँवाला बाग के हत्यारे जनरल ओडवायर को भरी सभा में अपनी गोली का निशाना बनाकर बदला लिया। इन्हीं वीरों के बलिदान से देश स्वतन्त्र हुआ है।

## उपसंहार :

आदर्श आर्यवीर वही है, जिसमें निम्नलिखित गुण विद्यमान हों—

१. राम जैसा आज्ञापालक।

२. लक्ष्मण जैसा तप।

३. हनुमान जैसी स्वामिभक्ति।

४. बालक भरत के समान निर्भीकता।

५. श्रीकृष्ण जैसा निरभिमान, नीति एवं योग-विज्ञान।

६. चाणक्य के सदृश्य राजनीति का ज्ञान।
७. महाराणा प्रताप-सा प्रताप और स्वाभिमान।
८. जयमल फत्ता जैसा युद्ध-प्रयाण।
९. वीर शिवाजी जैसा साहस और नीतिज्ञता।
१०. बालक हकीकतराय जैसा धर्मप्रेम।
११. गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों जैसी धर्मनिष्ठा एवं वीरता।
१२. बन्दा वैरागी जैसा बलिदान।
१३. स्वामी दयानन्द जैसा ब्रह्मचर्य और वेदज्ञान।
१४. रानी झाँसी जैसा संग्राम।
१५. क्रान्तिकारी वीरों जैसा स्वदेश प्रेम और स्वतन्त्रता अभियान।

## अनुशासन की चार विशेषताएँ :

१. मुस्कराते हुए आज्ञा पालन करना।
२. निःसंकोच कठोर परिश्रम करना।
३. समय का पालन करना।
४. झूठ न बोलना, बहाने न बनाना।

# ४. अनुशासन

किसी भी संस्था को सुचारु रूप में सञ्चालित करने के लिए निश्चित किये गये नियमों के पालन करने को अनुशासन कहते हैं। अंग्रेजी भाषा में इसका अनुवाद (Discipline) होता है। Disciple शिष्य को कहते हैं। शिष्यत्व की भावना, आज्ञा-पालन या नियम-निर्देश का परिपालन करना ही अनुशासन कहलाता है।

अनुशासन से पहले शासन का होना अनिवार्य है। निश्चित विधि-विधान, नियम, आज्ञा, आचारसंहिता एवं दण्ड का नाम शासन है। आज्ञा एवं नियम का परस्पर सम्बन्ध है। आज्ञा को विशेषरूप में स्वीकार करने पर उसे पालन करने के लिए नियम, कानून और व्यवस्था का होना आवश्यक है, अन्यथा आज्ञा का पालन नहीं हो सकेगा।

शासन से पूर्व उसके निर्माता का होना अनिवार्य है। यह कार्य माता, पिता, गुरु समाज एवं राजा के अधीन है। इसमें भी ध्यान रखने की बात यह है कि शासन के नियम और विधि-विधान यदि **"बहुजन हिताय च बहुजन सुखाय"** होंगे तो जनसाधारण उसके अनुसार स्वेच्छा से चलने लगेगा। शासन के अनुकूल चलना ही अनुशासन कहा जा सकता है।

अनुशासन बाह्य न होकर स्वैच्छिक और आभ्यान्तर होना चाहिए। बलात् लादी गई कोई भी पद्धति कालान्तर में विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। किसी कारण से सभी लोग यदि सहमत न हो सकें तो बहुमत का समर्थन आवश्यक है। जिनसे बलात् अनुशासन का पालन करवाना पड़े उन्हें भी युक्तिपूर्वक समझाने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे उनका हृदय परिवर्तन हो सके और वे समर्थन न सही, विरोध भी न कर सकें। इस उद्देश्य से साम, दान, भेद और दण्ड-नीति का समयानुसार प्रयोग करना महत्त्वपूर्ण है।

अनुशासन ही व्यक्ति के व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र को महान् बनाता है। बाह्य संसार एवं आभ्यन्तर जगत में हम देखते हैं कि सर्वत्र अनुशासन का

साम्राज्य है। सृष्टि का सञ्चालन नियमपूर्वक हो रहा है। बीजों के अनुसार वृक्षों का अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होकर फल लगाना और पुनः उन फलों से वैसे ही बीजों की उत्पत्ति—इन सब कार्यों में नियम, क्रम देखा जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, उपग्रह एवं ब्रह्माण्ड के अन्य लोक-लोकान्तर अपनी नियत कक्षाओं में गति कर रहे हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित छोटे विमानों को आकाश में परस्पर टक्कर हो जाती है, परन्तु आकाशीय पिण्डों को टकराते नहीं देखा गया।

मानव शरीर में भी विभिन्न तन्त्र परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी बनकर कार्य करते हैं। शरीर की प्रत्येक कोशिका अपना कार्य जानती है। किसी कारणवश जब ये कोशिकाएँ अपना नियम तोड़ देती हैं तो उस समय विकार प्रकट हो जाते हैं। कैंसर का रोग मुख्यतः शरीर की विभिन्न कोशिकाओं द्वारा विद्रोही होकर अनावश्यक रूप से बढ़ जाना ही है।

यदि जंगलों में जाकर पशु, पक्षी एवं कीट-पतंगों का अध्ययन करें तो विदित होगा कि जंगल का प्रत्येक प्राणी अपनी सुरक्षा के लिए समूह द्वारा निर्धारित संकेतों का पालन करता है। हाथी, हिरण, बन्दर, चींटियाँ, मधुमक्खियाँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

मनुष्य भी एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के उसका विकास सम्भव नहीं है। सामाजिक उन्नति के लिए समाज द्वारा निर्दिष्ट नियम और विधान का पालन करना बहुत आवश्यक है। बच्चा बाल्यकाल में माता-पिता की प्रत्येक बात का अनुकरण तथा पालन करता है। विद्यालय में गुरु उसके बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अनेक नियमों का पालन करवाता है। विद्या-समाप्ति के अनन्तर गृहस्थ जीवन के नियम, जोकि समाज एवं राजाज्ञा द्वारा बनाये गये हैं, पालन करने पड़ते हैं। राज्य नियमों का पालन करना भी सभी के लिए अनिवार्य है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन में सर्वत्र अनुशासन का ही बोलबाला है।

किसी भी संगठन को चलाने के लिए अनुशासन महत्त्वपूर्ण है। 'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें', आर्यसमाज का यह नियम

अनुशासन-पालन का ही संकेत कर रहा है। व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र बड़ा है, इसलिए, जनहित के कार्यों में निजी स्वार्थ का त्याग करना पड़े तो उसे भी त्यागकर राष्ट्र-कल्याण के रथ को आगे बढ़ाना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी उच्च चरित्रवान, धर्मात्मा, विद्वान एवं व्यवहार-कुशल पराक्रमी व्यक्ति को संगठन या राष्ट्र का नेता मानकर अन्य लोग उसकी आज्ञा-पालन में तत्पर रहें। नेता का भी यह कर्त्तव्य है कि निजी स्वार्थ का परित्याग करके अहर्निश जनता जनार्दन के हित-चिन्तन में तल्लीन रहे। किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य में योग्य व्यक्तियों से परामर्श अवश्य करे। तानाशाही या मनमानी करनेवाले नेता के विरुद्ध एक-न-एक दिन प्रजा विद्रोह का झण्डा उठा ही लेती है।

मनुष्य समुदाय में सबसे विशिष्ट सेना का संगठन है। बिना अनुशासन के सेना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विशाल भीड़ को छोटी-सी अनुशासित सेना छिन्न-भिन्न कर देती है। मिलकर सञ्चलन (मार्चिंग) दौड़ना, व्यायाम, अस्त्र-शस्त्र सञ्चालन, आक्रमण, सुरक्षा एवं विभिन्न संकेतों तथा आदेशों का अक्षरशः पालन एक अच्छे सैनिक के गुण हैं। उसे अपने नेता की प्रत्येक आज्ञा का ननु-नच किये बिना पालन करना चाहिए।

यहाँ इस तथ्य को भी हृदयगंम कर लेना चाहिए कि नेता जिन आदर्शों व आज्ञाओं का परिपालन सैनिकों से करवाना चाहता है, उसके जीवन में वे आदर्श एवं कार्य मूर्तरूप में विद्यमान होने चाहिएँ अन्यथा उसकी आज्ञा का पूर्णरूप से पालन नहीं हो सकेगा। अनुभव में तो यही आया है कि यदि नेता में आवश्यक योग्यता है तो सैनिक उसके पीछे हँसते-हँसते जान की बाजी लगाने को सन्नद्ध रहते हैं। सेनापति को "जाओ, यह काम करो" के स्थान पर "आओ, हम सब यह कार्य करें" ऐसा कहना उचित है।

व्यक्ति से राष्ट्र बड़ा है। अतः सैनिकों का भी यह कर्त्तव्य है कि किसी उच्च अधिकारी में यदि कोई न्यूनता है तो उस ओर ध्यान न देकर राष्ट्रदेव की रक्षार्थ सर्वथा उद्यत रहना चाहिए। एक-एक व्यक्ति से ही राष्ट्र बनता है। इसकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

अनुशासन पालन के अनेक आदर्श हमारे सामने उपस्थित हैं—जैसे श्री

रामचन्द्रजी का माता-पिता की आज्ञा मानकर वनगमन, लक्ष्मण का बड़े भाई के आदेशानुसार सीता को ऋषियों के आश्रमों में छोड़कर आना, गुरुकुल में अध्ययन करते समय उद्दालक एवं आरुणि का अपने गुरु आयोदधौम्य की आज्ञा मानकर भोजन-त्याग एवं वर्षा के समय जल-प्रवाह को रोकने के लिए मेंढ के स्थान पर स्वयं लेट जाना, वीर तानाजी का छत्रपति शिवाजी के आदेश से निज प्राणों की आहुति देकर भी सूर्योदय से पूर्व सिंहगढ़ के किले पर विजय-पताका फहराना, गुरु गोविन्दसिंह के चौथे पुत्र जुझारसिंह का युद्ध में जाने से पहले पानी माँगना और गुरु का यह आदेश कि जाओ, "जहाँ तुम्हारा भाई अजीतसिंह गया है वहीं रक्त से अपनी प्यास बुझाओ" सुनकर भूखे सिंह की भाँति अरिदल पर टूट पड़ना और लड़ते-लड़ते बलिदान हो जाना, वीर बालक कैसेबियंका का पिता की आज्ञानुसार जहाज पर खड़े रहना और जहाज में आग लग जाने पर भी अडिग रहकर अग्नि की लपटों में भस्म हो जाना इत्यादि।

अनुशासन परीक्षा की वह भट्टी है जिसमें तपकर सोना कुन्दन और पीतल काला हो जाता है। इसके लिए तप, संयम, आदर्श एवं कर्त्तव्य पालन का अभ्यास होना चाहिए। अनुशासन पालन वही कर सकता है जो स्वयं अनुशासित हो। इसका अभ्यास बचपन से करना आवश्यक है। माता-पिता की प्रत्येक हितकारी बात को माननेवाला बालक ही आगे जाकर नेतृत्व सँभालता है। अनुशासित बच्चे की शक्ति व्यर्थ कार्यों में न लगकर रचनात्मक कार्यों में लगती है। विद्यालय में अध्यापक को प्रतिदिन अभिवादन, दिये पाठ का स्मरण, अन्य नियमों का पालन उसे सभी गुरुजनों का प्रिय बना देता है।

हम प्रतिदिन देखते हैं कि किसी भी क्रीड़ा प्रतियोगिता में उसी दल को विजयश्री मिलती है जिसके खिलाड़ी अनुशासित और परस्पर तालमेल से खेलते हैं। जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए यही भावना प्रत्येक राष्ट्र के प्रबुद्ध नागरिक में होनी चाहिए। जापान देश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पूर्णरूप से ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी आज ज्ञान-विज्ञान और अर्थोपार्जन में उसने अमेरिका जैसे समृद्ध देशों को पीछे छोड़ दिया है। आओ, हम सब मिलकर इस उद्घोष को सर्वत्र उद्घोषित करें।

"अनुशासन ही देश को महान् बनाता है।"

# ५. चरित्र-निर्माण

संसार में व्यक्ति का चरित्र सबसे बड़ा है। धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया, तो कुछ गया पर यदि चरित्र गया तो समझो सब-कुछ गया।

**"अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः।"** —महाभारत

अर्थात् जिस व्यक्ति के पास चरित्ररूपी रत्न है उसके आगे समस्त संसार नतमस्तक होता है। निर्धन धनवान से डरता है, दुर्बल बलवान् से डरता है, मूर्ख विद्वान से डरता है, परन्तु चरित्रवान् से ये सब डरते हैं। सांसारिक चमक-दमक, भोग भोगने के साधन, वैभव-विलास, आमोद-प्रमोद, सुख-सुविधा और मान-सम्मान उसे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकते। चरित्रवान् व्यक्ति सुदृढ़ चट्टान की भाँति प्रलोभनों के प्रबल झंझावात के सामने अडिग रहता है। वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने ऐसे उज्जवल नरपुंगव को जन्म दिया है, जिसके दर्शन-मात्र से ही लोग अपना अहोभाग्य समझते हैं। उसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है।

चरित्र मानव-जीवन का दर्पण है। चरित्र व्यक्ति की आदतों (कार्यों) का समूह है। व्यक्ति प्रतिदिन जो कार्य करता है उसका संस्कार उसके मानस पर पड़ता है। ये संस्कार सुदृढ़ होकर स्वभाव (आदत) में परिणत हो जाते हैं। ये आदतें ही चरित्र कहलाती हैं।

चरित्र-निर्माण के लिए केवल बाहर की रूप-रेखा पर ही विचार करना आवश्यक नहीं है। बाहर का चरित्र 'व्यवहार' कहलाता है। व्यवहार का व्यक्तिगत रूप 'आचार' है और आचार का मौलिक रूप 'विचार' है।

मनुष्य के जीवन में इससे अधिक सत्य और कोई बात नहीं है कि हम जैसा बनने का विचार करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। **'क्रतुमयः पुरुषः'** (उपनिषद्), अर्थात् पुरुष अपने संकल्पों का बना हुआ होता है। उसका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक होता है, अर्थात् कार्य करने से पूर्व उसके मन में उस कार्य को करने

का विचार (संकल्प) उत्पन्न होता है। यही संकल्प आगे जाकर कार्यरूप में बदल जाता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि चरित्र-निर्माण में विचार ही मूल कारण है। चरित्र वह अनमोल हीरा है, जिसका जन्म माता की कोख से होता है। हीरे की उत्पत्ति सर्वत्र नहीं होती, इसके लिए विशिष्ट परिस्थितियों का होना आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार धार्मिक एवं विदुषी माता बालक के गर्भ में आते ही संयम, सदाचार, आरोग्य, समुचित भोजन एवं सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करे, क्योंकि उसकी अमिट छाप बालक पर पड़ती है। जन्म के बाद पाँच वर्ष तक माँ बालक को शुद्ध उच्चरण, धार्मिक शिक्षा, सदाचार, संयम, शूरवीरता की शिक्षा देकर सभी दुर्गुणों से बचाये जिससे कि उस सुकोमल बालक के अन्तःकरण पर इन सद्गुणों की अमिट छाप पड़ जाए, तभी भविष्य में वह संसार के आघातों को सहन करने में समर्थ हो सकता है।

माता के पश्चात् पिता बालक का चरित्र-निर्माण करने का उत्तरदायित्व सँभाले। बालक को दिनचर्या, कर्त्तव्यकर्म, स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य के लाभ इत्यादि विविध उपदेश पिता को देने उचित हैं।

आठ वर्ष के पश्चात् माता-पिता इस अमूल्य हीरे को, जो यद्यपि बाहर-भीतर पूर्णरूप से हीरा है, परन्तु अस्पष्ट आकृतिवाला होने से अपनी दीप्ति से प्रदीप्त नहीं हो रहा है, गुरु को समर्पित कर दे। गुरु के गर्भ में इसका पुनः निर्माण होता है। इस बार उससे पहले से और सुदृढ़ बनाकर यम-नियमों के शाण-यन्त्र पर घिसाया जाता है। यदि कहीं कमी रह गई हो तो काट-छाँटकर उसे दूर किया जाता है। विद्या, योग एवं पुरुषार्थ की भट्टी में तपाया जाकर अब वह देदीप्यमान होकर अपनी ज्योत्स्ना से लोगों को चकाचौंध करने लगता है। धर्म, संयम व सदाचार की पालिश करने के पश्चात् उसे पुनः माता-पिता एवं समाज को वापस दे दिया जाता है। गुरु के यहाँ निर्मित इस चरित्र धन के धनी, अनुपम रत्न को सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या देवता भी देखने आते हैं।

**तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।** —अथर्ववेद

यह आर्यावर्त देश प्रारम्भ से ही चरित्र-धन का धनी रहा है। यहाँ गुरुजन डिण्डिमघोष से यह उद्घोष करते थे—**"चरित्रांस्ते शुन्धामि"** (यजुर्वेद)—

हे बालक ! मैं तेरे समस्त आचार, विचार एवं व्यवहारों को शुद्ध करता हूँ। यह बात वही कह सकता है जो स्वयं भी चरित्र का धनी, आचार-विचार से शुद्ध और परोपकारी हो। इन्हीं श्रेष्ठ गुरु, आचार्य एवं विद्वानों के पद-पंकजों में आकर विद्या ग्रहण करने तथा चरित्र की शिक्षा लेने के लिए मनु महाराज कहते हैं—

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।।** —मनुस्मृति

अर्थात् समस्त भूमण्डल के लोग इस आर्यावर्तदेश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण, विद्वान, गुरु, आचार्य इत्यादि के चरणों में बैठकर चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें। कभी तक्षशिला और नालन्दा जैसे बहुत बड़े-बड़े विश्वविद्यालय थे, जहाँ सहस्रों विद्यार्थी देश-विदेश से आकर विद्या पढ़ते थे। इसी ज्ञान-विज्ञान एवं चरित्र-बल के कारण महाभारत तक आर्यों का समस्त भूमण्डल पर चक्रवर्ती साम्राज्य रहा। यहाँ जन्म लेने से लिए मनुष्य तो क्या देवता भी लालायित रहते थे।

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।**
**स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।**
—विष्णुपुराण

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का माता-पिता की आज्ञा-पालन व भ्रातृभाव, श्रवण की पितृभक्ति, हनुमान् की स्वामिभक्ति, भीष्म पितामह की ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा, लक्ष्मण का तप, हरिश्चन्द्र की सत्य-निष्ठा, अर्जुन का संयम, महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी का अहिंसा प्रेम, महर्षि दयानन्द की वेदों की प्रति निष्ठा और स्वहित से अधिक संसारहित की भावना, शंकराचार्य का ब्रह्मचर्य, वीर बालक हकीकत की धर्मनिष्ठा, नेताजी सुभाष एवं अन्य क्रान्तिकारी वीरों का देशप्रेम चरित्र के अनुपम आदर्श हैं, जिनसे आर्यजाति आज भी मार्गदर्शन प्राप्त कर सकती है।

जैसाकि पूर्व कहा जा चुका है कि चरित्र निर्माण का मूल 'विचार' है। विचार शुद्धि के लिए यह परमावश्यक है कि परमात्मा को सदैव अपने हृदय में विराजमान जानकर उसका चिन्तन करते रहना चाहिए। परमात्मा हमारे मन की सब गतिविधियों को जानता है। वह सर्वत्र व्यापक है। कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ

वह विराजमान न हो, अतः सदैव दुर्विचारों का परित्याग करने प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ यह कहना भी उपयुक्त होगा कि व्यक्ति के अच्छे या बुरे विचार आकाश में फैलकर पुनः वापस आते हैं। जैसे ध्वनि लौटती है, वैसे ही विचारकर्त्ता के अच्छे विचार वातावरण से अन्य शुभ विचारों को साथ लाते हैं, इसी प्रकार कुविचार दुगुने वेग से आक्रमण करते हैं, अतः यथाशक्ति शुभ संकल्प ही करने चाहिए। विशेषतः सायंकाल शैय्या पर जाकर अच्छे विचारों का चिन्तन करते हुए सोना चाहिए!

विचारों का व्यक्तिगत रूप में पालन करना आचार कहलाता है। योग के पाँच नियम—**शौच**—अर्थात् बाह्य व आभ्यन्तर शुद्धि—मन में पवित्र विचार, स्नान, शुद्ध वस्त्र पहनना। **सन्तोष**—किये हुए पुरुषार्थ के फल से सन्तुष्ट रहना। **तप**—विद्या और धर्मवृद्धि के लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान इत्यादि की चिन्ता न करके निरन्तर आगे बढ़ते रहना। **स्वाध्याय**—आत्मा, परमात्मा सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़ना। **ईश्वरप्रणिधान**—सर्वस्व ईश्वरार्पण करना, ये वैयक्तिक चरित्र के उत्कृष्ट साधन हैं। इनके अतिरिक्त प्रातः जागरण, नियमित दिनचर्या, माता-पिता, गुरु एवं वृद्धजनों का सम्मान करना, परिश्रमपूर्वक विद्या पढ़ना, परीक्षा में नकल न करना, मधुर सम्भाषण, अच्छी संगति में बैठना स्वस्थ मनोरञ्जन, महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ना, सादा जीवन और उच्च विचार आदि अन्य आवश्यक गुण हैं।

सामाजिक चरित्र में पाँच यम—**अहिंसा**—सबसे वैरभाव का त्याग, **सत्य**—यथार्थ बात कहना, **अस्तेय**—चोरी न करना, **ब्रह्मचर्य** पालन एवं **अपरिग्रह**—आवश्यकता से अधिक संग्रह त्यागना आते हैं।

इसके अतिरिक्त इन बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है—

१. जैसे व्यवहार की आप दूसरों से आशा रखते हैं, वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करना चाहिए।
२. अपनी सुख-सुविधा के साथ दूसरों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

३. अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रियों को माता, बहिन या पुत्री की निगाह से देखना चाहिए।

४. बिना परिश्रम के या अन्याय से धन-प्राप्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

५. वेशभूषा सादगीवाली और सामाजिक परिवेशवाली होनी चाहिए।

६. जब दो व्यक्ति बात कर रहे हों, तब उनके मध्य में जाना, उनकी बातें सुनना और उनकी बात काटकर बोलना अशिष्टता है।

७. सभी दुर्व्यसनों से दूर रहना चाहिए।

८. समय का सदुपयोग, नियत समय पर कार्य करना, नियमबद्धता कार्य-सिद्धि का मूल है।

९. जिससे जो प्रतिज्ञा की हो उसे यथासम्भव पूरा करना चाहिए।

१०. कर्त्तव्यपरायण रहना मानव को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचा देता है।

व्यवहार के लिए अन्य और भी बहुत-से सद्गुण हैं, जिनका आचरण मानव जीवन को समुन्नत, सुखी और समृद्ध बनाने में लाभदायक है। इसके साथ ही राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के लिए देशभक्ति, एकता, श्रम का महत्त्व, समुचित कर(टैक्स) देना, योग्य व्यक्तियों को सरकार में भेजना, राष्ट्ररक्षा इत्यादि गुणों का समावेश होना चाहिए। चरित्र की यह माला विभिन्न सद्गुणरूपी रत्नों का गुम्फन करने से ही सुशोभित होती है।

# ६. स्वास्थ्य रक्षा

मानव जीवन के लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति का साधन स्वस्थ शरीर ही है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। रोग या दुर्बलता हमारी असावधानी या पापों का फल है। रोगी व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को भार समझता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह हर सम्भव उपाय द्वारा अपने स्वास्थ्य को बनाये रक्खे। युवावस्था के प्रारम्भ में तो इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि यही समय शरीर की वृद्धि और पुष्टि का है। यदि इस समय असावधानी या शरीर की उपेक्षा की गई तो आगे पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा।

स्वास्थ्य की परिभाषा सुश्रुत-संहिता में बहुत ही सारगर्भित और सीमित शब्दों में की गई है—

**समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।**
**प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधयिते।।**

जिसके वात, पित्त व कफ तीनो दोष समान हों, जठराग्नि प्रदीप्त, शरीर को धारण करनेवाली धातुएँ—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्ञा और वीर्य समान अनुपात में हों, मल-मूत्र की प्रवृत्ति समुचित रूप में होती हो, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और शरीर का स्वामी आत्मा भी प्रसन्न हो, ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहते हैं। यहाँ शरीर के साथ, मन, बुद्धि और आत्मा इन सबके स्वास्थ्य की ओर संकेत किया है।

कहते हैं कि आयुर्वेद के उद्‌भट विद्वान आचार्य चरक ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का विचार किया। विद्यालय से अवकाश होने पर विद्यार्थी गप-शप करते हुए अपने छात्रावास की ओर जा रहे थे। आचार्य महोदय मार्ग के समीप विद्यमान पुराने वृक्ष के कोटर में छिपकर बैठ गये और अस्पष्ट स्वर में प्रत्येक गुजरनेवाले छात्र से यह प्रश्न पूछा—कोऽरुक्, कोऽरुक्,? कौन रोगी नहीं, अर्थात्

स्वस्थ कौन है? इन्हीं छात्रों में एक प्रबुद्ध छात्र वाग्भट्ट भी था। उसने इस वाक्य को ध्यान से सुना और तुरन्त उत्तर दिया—हितभुक, मितभुक, ऋतभुक। जो व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुकूल, ऋतु अनुसार, मात्रा में भोजन करता है, वही स्वस्थ है। इन्हीं आचार्य ने स्वस्थ रहने के लिए आगे कहा—

**नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी व्यसनेष्वसक्तः।**
**दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।**

जो नित्यप्रति हितकारी आहार-विहार का सेवन करता है, प्रत्येक कार्य उसके परिणाम पर विचार करके करता है, जो विषयों और व्यसनों में आसक्त नहीं है, दानशील है, सुख-दुःख में समानभाव से रहता है, सत्यपरायण और क्षमाशील है एवं जो शास्त्रों के ज्ञाता सदाचारी विद्वानों का सत्संग करता है वह कभी भी रोगी नहीं होता, अर्थात् सदा स्वस्थ रहता है। इन बातों पर क्रमशः विचार करते हैं—

१. **आहार**—हमारे जीवन में भोजन का मुख्य स्थान है। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीनों शरीर को धारण करनेवाले उपस्तम्भ (खम्भे) हैं। सुन्दर स्वास्थ्य के लिए इन तीनों पर ध्यान देना आवश्यक है। प्राणियों के प्राण, वर्ण, वाणी, जीवन, बुद्धि, सुख, प्रसन्नता, पुष्टि, बल, पराक्रम आदि सभी भोजन पर अवलम्बित हैं।

## आहार के कार्य :

भोजन के मुख्यतः चार कार्य हैं—

(क) **क्षतिपूरण**—हमारे शरीर की विविध क्रियाओं के कारण बहुत-सी कोशिकाएँ नष्ट होती रहती हैं। ये नष्ट हुई कोशिकाएँ मल, मूत्र, थूक, स्वेद इत्यादि द्वारा शरीर से विसर्जित होती रहती हैं और इनका स्थान नवीन कोशिकाएँ ले-लेती हैं। इन कोशिकाओं का निर्माण भोजन द्वारा गृहीत प्रोटीन तथा खनिज लवणों द्वारा होता है।

(ख) **धातु बृंहण**—नवजात शिशु का भार २-४ किलो और लम्बाई १८-२२ इंच होती है। आगे जाकर युवावस्था में यही शिशु ७५-१०० किलो भार और ६०-७० इंच लम्बाईवाले युवा में परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन एवं परिवर्धन में भोजन ही मुख्य कारण है। शरीर

में प्रतिदिन होनेवाली क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त रसादि सातों धातुओं की वृद्धि करना भोजन का दूसरा कार्य है। यह कार्य प्रोटीन, श्वेतसार और वसायुक्त खाद्यपदार्थ करते हैं।

(ग) **ऊष्णता स्थापन**—किसी भी देश या जलवायु में मनुष्य के शरीर का तापमान सामान्यतः ९८.४ डिग्री बना रहता है। इस उष्णता को श्वेतसार तथा वसायुक्त भोजन बनाये रखते हैं।

(घ) **ऊर्जा (शक्ति) सम्पादन**—प्राणियों का शरीर एक जीवित यन्त्र है। जैसे विद्युत उत्पादक यन्त्र में ईंधन डालने से ऊर्जा (विद्युत) का उत्पादन होने लगता है, ठीक वैसे ही प्राणियों द्वारा गृहीत अन्न का शरीर में ज्वलन (Oxidation) होकर उष्णता और ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। यही ऊर्जा शरीर को विविध कार्य करने की शक्ति प्रदान करती है। ऊर्जा उत्पन्न करनेवाले खाद्य पदार्थ श्वेतसार, शर्करा एवं वसा (चिकनाई) हैं।

इनके अतिरिक्त खनिज, लवण एवं विटामिन शरीर की बहुत-सी क्रियाओं को सुचारु रूप में बनाये रखते हैं। इनके अभाव में शरीर रोगी हो जाता है।

आहार का उद्देश्य केवल शरीर-निर्माण करना एवं उसे गतिशील बनाये रखना ही नहीं है। जैसे दूध के सारभाग (मक्खन, क्रीम) को दूध मथकर प्राप्त करते हैं, वैसे ही अन्न का पाचन होकर उसके सूक्ष्मभाग से हमारे मन का निर्माण होता है। कहावत भी है—'जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन'। इसलिए हमें खाते समय प्रोटीन, विटामिन, श्वेतसार, वसा या अन्य आवश्यक तत्त्वों के अतिरिक्त यह भी विचार करना चाहिए कि इन खाद्य पदार्थों की प्रकृति सात्त्विक, राजसिक, तामसिक किस प्रकार की है। राजसिक और तामसिक पदार्थों के सेवन से मन बुद्धि विकृत हो जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

## भोजन के आवश्यक नियम :

ताजा भोजन करने से उचित मात्रा में पाचक रस की उत्पत्ति होकर उसका पाचन भली-भाँति होता है तथा वातादि दोष भी शान्त होते हैं।

(क) पहले किये हुए भोजन के पच जाने पर ही अगला भोजन करना चाहिए। कम-से-कम पाँच घण्टे का अन्तर दूसरे भोजन में होना

चाहिए। अल्पाहार लेने के पश्चात् भी तीन घण्टे के अन्तर से भोजन करना उचित है। इन दोनों के मध्य में जल को छोड़ अन्य कोई खाद्य पदार्थ नहीं लेना चाहिए। प्रातःकाल अल्पाहार, मध्याह्न में भोजन, सायंकाल पेय पदार्थ और रात्रि में पुनः भोजन करना उचित है। दो बार ही पेट भरकर खाने की अपेक्षा चार बार स्वल्प मात्रा में भोजन करना लाभदायक है।

(ख) आमाशय का आधा भाग अन्न से, चतुर्थांश पेय पदार्थों से और शेष भाग सुखपूर्वक श्वास-प्रश्वास लेने तथा भोजन को सरलता से उदर में गति करने के लिए छोड़ देना चाहिए।

(ग) भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। चबाने से मुख की लार भोजन में मिलकर श्वेतसार का पाचन कर देती है। अन्यथा दाँतों का कार्य आँतों को करना पड़ता है।

(घ) शान्त चित्त एवं प्रसन्न होकर सुन्दर, स्वच्छ स्थान पर भोजन करने से उसका पाचन सरलता से होता है। गप-शप, हँसी-मजाक और क्रोध-शोक की स्थिति में भोजन करना हानिकारक है।

(ङ) अपनी प्रकृति एवं मन के अनुकूल भोजन करने से शरीर स्वस्थ रहता है। 'रुचे सो पचे'। युवावस्था में उष्ण-प्रकृति के खाद्य पदार्थ—मिर्च, मसाले, तेल, खटाई, चाय, काफी, प्याज, लहशुन आदि का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा इनसे शरीर में अनावश्यक उष्णता एवं उत्तेजना होकर बल-वीर्य की क्षीणता होती है।

(च) व्यायाम तथा स्नान के आधा घण्टा पश्चात् भोजन और भोजन के तीन घण्टे पश्चात् व्यायाम करना चाहिए। सायंकाल का भोजन सोने से २-३ घण्टे पहले करना उचित है।

(छ) मध्याह्न के भोजन के पश्चात् दाहिने, सीधे और बायें लेटकर कुछ समय विश्राम करना या वज्रासन में बैठना चाहिए। सायंकाल भोजन करके कुछ भ्रमण या मनोरञ्जन करना उपयोगी है। भोजन के तुरन्त बाद शारीरिक या मानसिक श्रम वर्जित है।

(ज) पानी भोजन के पश्चात् पीने से पाचकरस हलके होकर भोजन का

पाचन सम्यक् रूप में नहीं हो पाता, अतः एक घण्टे पश्चात्
थोड़ा-थोड़ा करके पानी पीना चाहिए। यदि रूक्ष भोजन है या प्यास
बहुत अधिक है तो मध्य में कुछ पानी पी सकते हैं।

(झ) रात्रि के पश्चात् उषःपान (जल पीना) भोजन के पश्चात् तक्र (छाछ)
और दिन के पश्चात् अर्थात् रात्रि में दूध पीना आयुवर्धक है।

## अभक्ष्य पदार्थों का परित्याग

बुद्धि को लुप्त करनेवाले मद्यादि, राजसिक और तामसिक अण्डे, मांस, तम्बाकू, अफीम इत्यादि अभक्ष्य पदार्थ हैं। मनुष्य मूलतः शाकाहारी है। उसके दाँत, आँतों की रचना तथा पाचक रसों का स्राव मांसाहारियों से भिन्न श्रेणी का है। मांसाहार में अधिकांश में प्रोटीन होता है। अधिक मात्रा में लिया गया प्रोटीन यूरिक एसिड तथा यूरिया में परिवर्तित होकर गठिया, वात-विकार, धमनी-काठिन्य तथा हृदय-रोगों की उत्पत्ति करता है। उसी प्रकार अण्डों के सेवन से रक्त में कोलेस्ट्राल बढ़कर हार्ट अटैक की सम्भावना बढ़ जाती है। मांस प्राप्त करने के लिए जीव-हिंसा करनी पड़ती है। पशुओं के संस्कार, रोग एवं अन्य विष भी मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर अनेक रोगों का कारण बनते हैं। मांस खाने से शक्ति बढ़ती है, यह भी केवल भ्रम है। संसार के सबसे शक्तिशाली प्राणी हाथी, गेण्डा, भैंसा, बैल इत्यादि शाकाहारी ही हैं। मांस खाने से केवल मांस ही बढ़ता है, प्राणशक्ति नहीं। प्राणशक्ति के लिए अंकुरित अन्न, ताजा दूध, स्वच्छ पानी, फल, शाक-सब्जी, अन्न, दाल तथा मेवों का सेवन करना हितकर है।

२. **विहार**—जिसकी दिनचर्या ठीक नहीं है, उसका स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है? उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्रातः चार बजे ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर उषःपान, शौच, दन्तधावन के पश्चात् यथाशक्ति व्यायाम भ्रमण करके स्नान, सन्ध्या, सत्संग, स्वाध्याय करना चाहिए।

जो युवक देर तक सोता रहता है उसके तेज, बल और बुद्धि क्षीण हो जाते हैं। स्वप्नदोषादि विकार प्रायः देर तक सोनेवालों को ही होते हैं। प्रातःकाल शुद्ध और शीतल वायु में भ्रमण व व्यायाम करने से व्यक्ति दिनभर तरोताजा बना रहता है। रात्रि में १० बजे सोकर प्रातः ४ बजे उठने का नियम प्रत्येक युवक को बना लेना चाहिए। रात को देर तक जागते रहना और प्रातः देर तक सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए व्यायाम अत्यावश्यक है। व्यायाम के विभिन्न प्रकारों में प्रातः आसन, प्राणायाम, भ्रमण, दौड़, स्फूर्तिदायक व्यायाम, दण्ड-बैठक, कुश्ती इत्यादि और हलके खेलों का अभ्यास करना चाहिए। सायंकाल भारी व्यायाम और स्पर्धात्मक खेल खेलने चाहिएं। बिना व्यायाम के ब्रह्मचर्य रक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। व्यायाम से शरीर में भोजन द्वारा बननेवाली शक्ति का सही उपयोग होकर शरीर बलिष्ट, सुन्दर, स्फूर्तियुक्त और सुगठित बन जाता है। सारे शरीर में रक्त-सञ्चार होकर रक्त शुद्ध हो जाता है। मस्तिष्क में शुद्ध रक्त जाने से वह भी अधिक सक्रियता से कार्य करने लगता है। मुटापे को दूर करने में व्यायाम से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। नित्यप्रति व्यायाम करने से दुर्बल और कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर और सुगठित शरीरवाला बन जाता है। हृदय-रोग, मधुमेह, मोटापा, वात व्याधि, गैस, अजीर्ण इत्यादि रोगों का मुख्य कारण शारीरिक श्रम का अभाव ही है। व्यायाम करने से पहले यदि तैल मालिश भी कभी-कभी कर ली जाए तो और भी अच्छा है। किसी भी व्यक्ति को अपने बल का आधा ही व्यायाम करना हितकर है। जब मुख सूखने लगे, मुख से श्वास लेने की इच्छा हो, दम फूलने लगे, मस्तक, छाती और बगल में पसीना आ जाए तो समझो कि आधा बल लग चुका।

व्यायाम के पश्चात् जब शरीर का पसीना सूख जाए, श्रान्ति दूर होकर श्वसन क्रिया सामान्य हो जाए तब लघुशंका करके शीतल और ताजा जल से स्नान करना चाहिए। इससे शरीर का मल दूर होकर ताजगी, प्रसन्नता और श्रान्ति का निवारण होकर स्फूर्ति आती है। यदि कभी गर्म जल से स्नान करना पड़े तो सिर पर गर्म जल न डालकर ग्रीवा से नीचे के शरीर पर डालें। गर्म जल से स्नान करने से दृष्टि शक्ति मन्द तथा बाल भी असमय में ही श्वेत हो जाते हैं। नजला, जुकाम का भय बना रहता है। वीर्यादि धातुओं में क्षीणता आती है। स्नान करते समय पहले शीतल जल सिर पर डालना चाहिए। इसके पश्चात् सारे शरीर पर डालकर शरीर का घर्षण हाथों या खद्दर के तौलिये से करना चाहिए, साबुन के स्थान पर मुलतानी मिट्टी या उबटन का प्रयोग करना अधिक लाभदायक है। नदी, तालाब, बावड़ी में तैरना सर्वोत्तम है।

स्नान के पश्चात् सन्ध्या, यज्ञ, सत्संग, स्वाध्याय यथाशक्ति करना चाहिए। इनसे मन, बुद्धि और आत्मिक स्वास्थ्य बना रहता है। इसके पश्चात् प्रातराश या

अल्पाहार करके अपने दैनिक कार्यों—अध्ययन, कृषि, व्यापार, सेवा इत्यादि में लग जाना चाहिए। प्रतिदिन इसी भाँति नियमित दिनचर्या का पालन करने से मानसिक शान्ति और आरोग्य की वृद्धि होती है। दैनिक कार्यों को शास्त्रोक्त, सज्जन पुरुषों के आचार के अनुकूल और स्वयं विचार करके करना चाहिए।

३. **ब्रह्मचर्य**—आहार और निद्रा के पश्चात् तीसरे स्तम्भ ब्रह्मचर्य की किञ्चित् चर्चा करनी उपयोगी है। अपने शरीर की शक्ति को शरीर में सुरक्षित रखकर विद्याध्ययन और ईश्वर की भक्ति करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचारी से रोग तो क्या मृत्यु भी दूर भागती है। जैसे तिलों में तेल विद्यमान है, वैसे ही शरीर का सारभाग वीर्य सारे शरीर में रहता हुआ भी १४ वर्ष पश्चात् प्रकट होने लगता है। यह २५ वर्ष तक वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। यही समय इस अमूल्य रत्न को सँभालकर रखने का है। इस समय इस ओर ध्यान न देकर विषयों में फँस गये तो फिर सारा जीवन नीरस और दुःखदायी बन जाएगा। जवानीरूपी इस रत्न को सुरक्षित रखने के लिए ब्रह्मचर्य के साधन—प्रातः जागरण, नियमित व्यायाम, प्राणायाम, सन्ध्या, सत्संग, स्वाध्याय का श्रद्धा से पालन करना चाहिए। इसके बाधक अश्लील चलचित्र, गीत, स्त्रियों का चिन्तन, क्रीड़ा, हास-परिहास, एकान्त सेवन तथा रजोगुणी एवं तमोगुणी पदार्थों का परित्याग करना चाहिए। सब सुधारों का सुधार ब्रह्मचर्य है। जो पूर्ण ब्रह्मचारी है उसके लिए संसार की कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

## मानसिक स्वास्थ्य :

शरीर और जीवात्मा के संयोग का नाम ही जीवन है। इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल शरीर के स्वस्थ होने और मन, बुद्धि तथा आत्मा के अस्वस्थ रहने पर व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। रोग पहले मानसिक पृष्ठभूमि में उत्पन्न होता है। मन के स्वस्थ रहने पर बहुत से शारीरिक रोगों के लक्षण भी स्वतः लुप्त हो जाते हैं। हृदयरोग, रक्तचाप, मधुमेह, दमा, नपुंसकता आदि अनेक रोगों में मानसिक असन्तुलन ही प्रधान कारण है।

मानसिक रोगों की उत्पत्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया (चुगली), निन्दा, अहंकार इत्यादि के कारण होती है। इनका कारण पूर्वजन्म के कुसंस्कार, असन्तुलित वातावरण और अविद्या है। रजोगुण और तमोगुणों की वृद्धि होने से भी पुरुष किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है। अविद्या और

अन्धविश्वास की पृष्ठभूमि में ही राग, द्वेष, अस्मिता और अभिनिवेश (मृत्युभय) क्लेशों के अंकुर उगते हैं। विषयों का ध्यान करने से उनमें आसक्ति, आसक्ति से काम-वासना, वासना की पूर्ति में बाधक वस्तु के प्रति द्वेष या क्रोध का भाव, क्रोध से विवेक-बुद्धि और स्मृति का नाश होने से मनुष्य का भी सर्वनाश हो जाता है।

## मानसिक रोगों की चिकित्सा :

आचार्य चरक के अनुसार सद्वृत्त (सूत्र ७-८) अर्थात् सदाचारी पुरुषों जैसा आचरण करने से इन दोषों की शान्ति होती है। देव, विद्वानों की संगति, उनके वचनों में श्रद्धा, गुरु, आचार्य एवं वृद्धजनों की सेवा, सत्कार, अग्निहोत्र, सत्संग, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना, भजन, कीर्तन, धर्म का आचरण, सत्य-भाषण, दान, क्षमा, धैर्य इत्यादि के द्वारा मानसिक रोगों का शमन करे। बुद्धि को विलुप्त करनेवाले तमो बहुल खाद्य-पदार्थों को न खाये, क्योंकि आहारशुद्ध होने से ही बुद्धि शुद्ध होती है।

काम को संकल्प (विषयों के चिन्तन के परित्याग) से जीते। जैसे अग्नि में घृत डालने से वह और भी प्रदीप्त होती है, वैसे ही विषयां के चिन्तन या भोगने से उनके प्रति आसक्ति और भी बढ़ती है। प्रजनेन्द्रिय और उदर की धैर्य से रक्षा (विषयों से निवारण) करे। नेत्रों की सहायता से हाथ-पैरों को अपवित्र कार्यों में जाने से रोके। मन से विचारकर नेत्र और कानों को उनके विषयों में प्रवृत होने से रोके। मन से विचारकर नेत्र और कानों को उनके विषयों में प्रवृत होने से मना करे। उत्तम कर्म के द्वारा मन और वाणी की रक्षा करे। क्रोध को शम (शान्ति), धैर्य और क्षमा से वश में करे। लोभ को सन्तोष से वश में करे। दान देने का स्वभाव बनाये। अप्रमाद (सावधानी) से भय को जीते और विवेक वैराग्य से मोह (आसक्ति) को नियन्त्रित करे (महा० शा० अ० २७४)। सब प्राणियों को अपने समान समझना और संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर हैं, यह विचारकर उन्हें छोड़ दे और आत्मा को परमात्मा के ध्यान में लगाए।

इन पूर्वोक्त आचरण के नियमों का पालन करने से मनुष्य को पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होकर पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं।

# ७. आर्यवीर-दल इतिहास के झरोखों से

किसी भी राष्ट्र, जाति और संस्था का इतिहास उसका आधार-स्तम्भ होता है। भावी पीढ़ी उससे प्रेरणा लेकर कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ती है। परिस्थितिवश दैन्यावस्था में आ जाने पर भी उसका मनोबल नहीं गिरता और वह पुनः अंगड़ाई लेकर खड़ी हो जाती है। इसके विपरीत इतिहास को विस्मृत करके समृद्ध लोग भी मार्गर्शक एवं आदर्श उपस्थित न होने से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। किसी का मानस बदलना है। तो उसके पूर्वजों के इतिहास में उलट-फेर करके उन्हें अयोग्य घोषित कर दिया जाए तो उस राष्ट्र या जाति का मनोबल गिरने में देर नहीं लगेगी।

## आर्यवीर-दल की स्थापना

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी अभियान से पौराणिक हिन्दु, मुसलमान एवं अन्य मतावलम्बियों में खलबली मच गई। वे सभी एकमत होकर इस क्रान्ति की ज्वाला को बुझाने के लिए दौड़े, परन्तु वह अग्नि शान्त न होकर दिन-रात बढ़ती ही गई।

स्वामीजी के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायी और अधिक उत्साह से पाखण्ड एवं अन्य मतावलम्बी-दुर्गों को ध्वस्त करने में लग गये। उनके तर्क के तीरों के सम्मुख विपक्षियों को मैदान छोड़ना पड़ा 'मरता क्या न करता' की उक्ति के अनुसार उन्होंने इन महापुरुषों के प्राण लेने का षड्यन्त्र रचा। अमर शहीद वीर लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल इसी कुचक्र के शिकार हुए।

**अति संघर्ष करे जो कोई। प्रगट अनल चन्दन से कोई।।**

धर्मान्ध लोगों द्वारा अपने नेताओं के बलिदान किये जाने पर उसका प्रतिकार करने के लिए १९२७ ई० में महात्मा हंसराज की अध्यक्षता में दिल्ली में एक विराट् महासम्मेलन हुआ। जिसके परिणामस्वरूप २६ जनवरी, सन् १९२९ ई० को आर्य-रक्षा-समिति के सुदृढ़ अंग के रूप में आर्यवीर-दल की स्थापना की गई। उस समिति के अध्यक्ष महात्मा नारायण स्वामी ने दस हजार आर्यवीर और पचास

सहस्र रुपये एक वर्ष में एकत्रित करने की प्रतिज्ञा की। आर्यों में इतना उत्साह था कि कुछ ही मासों में ये दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी हो गईं।

इसी मध्य महाशय राजपाल का लाहौर में धर्मान्ध लोगों द्वारा वध कर दिया गया। इन्हीं परिस्थितियों में महात्मा नारायण स्वामी की अध्यक्षता में सन् १९३१ ई० में दूसरे आर्य-महासम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें आर्यवीर-दल की शाखा प्रत्येक प्रान्त, नगर और आर्यसमाज में स्थापित करने का आदेश दिया गया और आर्यवीर दल के नियमित सञ्चालन के लिए बलिष्ठ आर्यवीरों को अन्य स्थानों पर प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। सर्वत्र क्षात्रधर्म का प्रचार-प्रसार होने से आर्यनेताओं पर होनेवाले आक्रमण रुक गये। सिंहों की दहाड़ सुनकर गीदड़ माँदों में जा छिपे। हिन्दु एवम् आर्यजनों के उत्सव, मेले, शोभायात्रा निर्विघ्न सम्पन्न होने लगे।

कालान्तर में हिन्दुओं के अन्य सामाजिक संगठनों की कुदृष्टि इसपर पड़ने लगी। उसकी विचारधारा में शिक्षित शिक्षकों ने भी उसमें सहयोग दिया। अनेक बार सामूहिक उत्सवों में इन संगठनों के कार्यकर्त्ताओं ने असहयोग किया। यह सब देखकर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्यवीर दल का समस्त उत्तरदायित्व उत्साही नवयुवक श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी को दिया तथा सन् १९३६ ई० में आर्यवीर दल के नियमों को संशोधित करके उन्हें विधिवत् स्वीकृत किया। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। धुन के धनी अदम्य उत्साही, शूरवीर युवक का नेतृत्व पाकर आर्यवीर दल दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करने लगा। सन् १९४२ ई० में ४०० आर्यवीरों का प्रथम शिविर बदरपुर (दिल्ली) में लगा जिसमें सारे देश से चुने हुए आर्यवीरों को एक मास तक सघन प्रशिक्षण दिया गया।

सारे देश में स्वतन्त्रता-संग्राम का बिगुल बजा हुआ था। 'करो या मरो' महात्मा गाँधी के इस उद्घोष से देश के नवयुवकों का खून खौल उठा। विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, रेल की पटरियाँ उखाड़ना, और डाकखाने तथा सरकारी कार्यालयों को अग्नि के अर्पण करना इत्यादि का अभियान सर्वत्र जोर पकड़ गया। ऐसे अवसर पर आर्यवीर कब चुप बैठनेवाले थे। शिविर समाप्त होने पर बहुत-से आर्यवीर इस संग्राम में कूद पड़े। तब से लेकर हैदराबाद रियासत के भारत में विलय होने तक का इतिहास आर्यवीरों के त्याग, बलिदान एवं शौर्य से भरा पड़ा

है। धीरे धीरे पेशावर, बन्नू, कोहाट से कलकत्ता तक आर्यवीर दल का जाल-सा बिछ गया। इसके कार्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

### १. सुरक्षा :

दिल्ली आर्यवीर दल ने सन् १९२७ ई० या इसके आसपास मुस्लिम गुण्डों से हिन्दुओं की रक्षा, गढ़मुक्तेश्वर तथा यमुना के घाटों पर, मेलों के अवसर पर जनता की सेवा, सहायता और सुरक्षा का प्रशंसनीय कार्य किया जिससे इसकी उपयोगिता सभी को प्रतीत हुई।

सन् १९४६ ई० में पश्चिमी पञ्जाब में हजारा, रावलपिण्डी तथा जेहलम जिलों में, जहाँ पर मुस्लिम संख्या अधिक थी, हिन्दुओं पर भयानक अत्याचार हुए। सैकड़ों स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए कुओं में छलांग लगाई। सैकड़ों युवक वीरतापूर्वक लड़ते हुए शहीद हुए। उस समय रावलपिण्डी, नौशेरा तथा अन्य स्थानों के आर्यवीरों ने अपनी जान पर खेलकर हिन्दुओं की रक्षा व सेवा की।

भारत की स्वाधीनता से पूर्व ही सीमाप्रान्त की हिन्दु-जनता को जीवन-मरण के संघर्ष से गुजरना पड़ा। पूर्वी बंगाल के नोआखली जिले में सोहरावर्दी के संकेत से मुस्लिम गुण्डे बंगाल के हिन्दुओं का निर्मम संहार कर रहे थे। सार्वदेशिक सभा द्वारा आदेश मिला कि २०० मौत से खेलनेवाले आर्यवीरों का दल पूर्वी बंगाल भेजा जाए। अलवर के दल को सैनिक भेजने का आदेश हुआ। सभा प्रधान के सामने एक सहस्र आर्यवीर खड़े कर दिये गये कि इनमें से किन्हीं २०० का चयन कर लें। प्रत्येक आर्यवीर जाने के लिए आग्रह कर रहा था। श्री ओम्प्रकाशजी त्यागी के नेतृत्व में आर्यवीर नोआखली के लिए रवाना हुए। वहाँ जाकर रेलवे स्टेशन से उतरकर प्रभावित क्षेत्र में अपना शिविर लगाने से पूर्व बम विस्फोट किया। गुण्डों को यह समझते देर न लगी कि यह घटना कुछ और संकेत कर रही है। उनकी हिम्मत उधर देखने की भी नहीं हुई।

पास में ही श्रीमती सुचेता कृपलानी के नेतृत्व में काँग्रेस का शिविर लगा हुआ था। इसके कार्यकर्त्ता अहिंसा का मिथ्या राग आलापते और आर्यवीर दल को गालियाँ देते थकते न थे। एक दिन मुस्लिम गुण्डों ने काँग्रेस शिविर पर धावा

बोल दिया और सुचेताजी के बालों को पकड़कर घसीटते हुए अपने क्षेत्र की ओर ले-जाने लगे। सूचना पाकर आर्यवीर दल के सेनापति श्री ओम्प्रकाशजी सशस्त्र आर्यवीरों के साथ गुण्डों पर टूट पड़े और उनका सारा नशा झाड़ दिया। सुचेताजी खुले बाल, धूललिप्त, भूमि पर पड़ी थीं। श्री ओम्प्रकाशजी को सामने देख आँखों में पानी भरकर बोलीं, "भैया ! तुम आ गये।" प्रत्युत्तर में इन्होंने कहा कि गुण्डों द्वारा बहिन का अपमान होता देखकर महर्षि दयानन्द के सैनिक कैसे चुप रह सकते हैं? ऐसे ही अनेक अवसरों पर अपनी जान हथेली पर रखकर आर्यवीरों ने न जाने कितनी माताओं बहिनों की जान बचाई है।

पूर्वी बंगाल से आये हिन्दु-शरणार्थियों का शिविर सीमा के पास लगा हुआ था। पाकिस्तानी सीमा केवल १०० मीटर दूर थी। यहाँ पाकिस्तानी अंसार गुण्डों से अनेक बार आर्यवीरों की झड़पें हुईं और उन्हें पीछे धकेल दिया गया। ऐसी ही घटना जयनगर के समीप हुई। पाकिस्तान सीमा को पार करके अंसार गुण्डों ने भारतीय चौकी पर आक्रमण करके अपना झण्डा गाड़ने का प्रयास किया इस समय शिविर में भारतीय पुलिस के केवल चार सिपाही थे जिनमें से एक रोगी था। श्री ओम्प्रकाशजी सेनापति आर्यवीर दल उस शिविर को सँभाल रहे थे। दोनों ओर से कुछ घण्टे तक गोलियाँ चलीं। अपनी दाल गलती न देख अंसार गुण्डे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। उनसे छीना पाकिस्तानी झण्डा अब भी आर्यवीर दल के कार्यालय में विद्यमान है जोकि अब भी आर्यवीर दल के शौर्य की याद दिला रहा है।

हैदराबाद के मुक्ति-संग्राम का प्रारम्भ तो आर्यवीरों ने ही किया था। तीन आर्यवीरों ने निजाम की कार पर बम फेंकने की योजना बनाई। योजनानुसार बम फेंका गया, परन्तु वह फटा नहीं। इससे पहले कि दूसरी कार्यवाही की जाए निजाम के अंगरक्षकों ने नारायणराव को दबोच लिया। उसे भयंकर यातनाएँ दी गईं, परन्तु उसने अपने साथियों के नाम नहीं बतलाए।

उमरी कस्बे में हैदराबाद के निजाम का बैंक था। आर्यवीरों ने योजनाबद्ध विधि से ३० लाख रुपया लूटकर सरदार पटेल के सुपूर्द कर दिया। इसी भाँति उदगीर के भाई श्यामलाल धारुर, जिला बीड़ के नवयुवक काशीराम, हुमनाबाद के शहीद वेदप्रकाश, श्री कृष्णरायजी ईटकर और अन्य बहुत-से आर्यवीरों ने

स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुतियाँ देकर हैदराबाद को मुक्त करने का श्रेय प्राप्त किया। हैदराबाद में पुलिस एक्शन के समय सारा कार्यभार आर्यवीरों पर ही था। इसलिए सरदार पटेल को कहना पड़ा कि यदि आर्यसमाज का सहयोग न होता तो सरकार को हैदराबाद को विजय करना कठिनतम होता। वस्तुतः इस रियासत की विजय का सम्पूर्ण श्रेय आर्यवीरों को ही जाता है।

## सेवाकार्य :

सेवाकार्य वही कर सकता है जो शरीर से बलिष्ठ तथा अहंकार से शून्य और मानवीय गुणों से युक्त हो। आर्यवीर इस कार्य में पीछे नहीं रहे हैं। कुछ प्रसंग इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सन् १९३९ ई० में मध्य भारत में दुर्भिक्ष पड़ा। सार्वदेशिक सभा ने आर्यवीरों के निरीक्षण में रतलाम, उज्जैन, झाबुआ, गोहद व मेघनगर में सहायता केन्द्र खोले। यह कार्य डेढ़ मास तक चला। सन् १९४२-४३ ई० में बंगाल में भयकंर अकाल पड़ा, जिसमें ४५ लाख लोग मौत के मुख में चले गये। आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब एवं सार्वदेशिक सभा के तत्वाधान में श्री खुशहालचन्द (आनन्द स्वामी) की अध्यक्षता में आर्यवीरों को सहायतार्थ भेजा गया। आर्यवीरों ने लाखों लोगों में भोजन, वस्त्र और ओषधि वितरण का कार्य किया।। इसी भाँति देश-विभाजन के समय अनेक सहायता शिविरों का सञ्चालन किया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् १९५० ई० में असम की बाढ़, केकड़ी (राजस्थान) और मोरवी (गुजरात) के जल-प्लावन में भी आर्य-वीरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

## प्रबन्ध व्यवस्था :

जहाँ विधर्मी, आततायी एवं असामाजिक तत्त्वों से आर्यजाति की सुरक्षा और सेवाकार्य में आर्यवीर दल का प्रशंसनीय योगदान रहा है, वहीं आर्यसमाज के बड़े-बड़े सम्मेलनों में सुरक्षा, चिकित्सा, सेवा, भोजन तथा अन्य अनेक कार्य आर्यवीरों ने सहर्ष किये हैं। १९५२ में नेपाल देश पर महाराजा श्री त्रिभुवन वीर विक्रमशाह देव को सेमरा वायु स्थल पर गॉर्ड ऑफ ऑनर तथा अन्य सुरक्षा का दायित्व दल के सेनापति श्री रामाज्ञा वैरागी ने सँभाला।

मथुरा जन्मशताब्दी की प्रबन्ध व्यवस्था का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आर्यवीरों ने ही वहन किया। उस व्यवस्था को वयोवृद्ध आर्यजन अब भी भूले नहीं हैं। जबकि बिना सरकार की सहायता के लाखों लोगों के सम्मेलन में एक भी दुर्घटना नहीं हुई। इसी भाँति सन् १९७५ में दिल्ली में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी तथा सन् १९८३ में अजमेर ऋषि निर्वाणोत्सव में सहस्त्रों आर्यवीरों ने प्रबन्ध में सहयोग दिया। अन्य प्रान्तीय सम्मेलनों में भी आर्यवीर सहयोग करते रहे हैं। १९९१ में उत्तरकाशी क्षेत्र में आये भयंकर भूकम्प से पीड़ित लोगों में तीन मास तक राहत सामग्री एवं भवन-निर्माण का प्रशंसनीय कार्य आर्यवीर दल ने किया है।

## उपसंहार

आर्यवीर दल का इतिहास, त्याग, बलिदान, देशभक्ति, सेवा और शौर्यगाथा से परिपूर्ण है। जिन्होंने धर्म एवं राष्ट्ररक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया। उन परिचित एवं अनाम शहीदों को हमारा शत-शत प्रणाम।

**तुमने दिया देश को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा?**
**अपना खून गर्म करने को नाम तुम्हारा लेगा।**

---

## सहायक पुस्तकें


१. आर्यवीर दल एक सर्वांगीण विवेचन, लेखक—आचार्य सत्यप्रिय
२. आर्यवीर दल एक परिचय, लेखक—रामाज्ञा वैरागी

# ८. आर्य-संस्कृति

संस्कृति जागरूकता की वह सम्पत्ति है, बोध और चेतना का वह प्रकार है, जो मनुष्य की आत्मा में बिना किसी बाह्य सम्पत्ति को प्रभावित किये शोभा, शिष्टता और शक्ति के विकास में सहायक होती है। परम्परागत अनुस्यूत (जुड़े हुए) संस्कार ही संस्कृति कहे जाते हैं। पहले से वर्तमान दुर्गुणों को हटाकर उनके स्थान पर सद्गुणों का आधान कर देने का नाम संस्कार है।[1] संस्कारी व्यक्ति को ही संस्कृत कहा जाता है। जिन गुणों से उसे संस्कृत किया जाता है उसे संस्कृति कहते हैं महर्षि दयानन्दजी ने यजुर्वेद (७।१४) में विद्या, सुशिक्षाजनित नीति (आचरण) को संस्कृति कहा है। विद्या और सुशिक्षा द्वारा उत्तम कृति अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि की उत्तम चेष्टाएँ या क्रियाएँ संस्कृति कही जा सकती हैं। अंग्रेजी भाषा में इसका पर्यायवाची शब्द Culture है जोकि (Culture) लेटिन धातु से बना है। इसके अर्थ बोना, खेती करना, उत्पन्न करना इत्यादि हैं। जैसे किसान भूमि को जोतकर उसमें अभीष्ट फसल का उत्पादन करता है, वैसे ही मानव के मन, बुद्धि और आत्मा में सुसंस्कारों का समावेश करना संस्कृति कहा जा सकता है।

## संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर

संस्कृति का सम्बन्ध व्यक्ति के आन्तरिक जगत् (मन, बुद्धि, आत्मा) से है जबकि सभ्यता उसके बाह्य जीवन से सम्बन्धित है। बाह्य शिष्टाचार, सफाई रखना, बातचीत का ढंग, परस्पर व्यवहार, सभा एवं समाज में किस प्रकार रहें इत्यादि बातें सभ्यता के अन्तर्गत आती हैं। सभ्यता एवं संस्कृति का क्षेत्र भिन्न होते हुए भी इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि इन दोनों का सम्बन्ध एक ही मानव-जाति से है ये दोनों एक-दूसरे प्रभावित करती हैं। सभ्यता शरीर है तो संस्कृति आत्मा।

---

१. संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते। — चरक

## धर्म एवं संस्कृति का सम्बन्ध

संस्कृति मानव को पूर्ण मानव बनाती है और धर्म इसमें सहायता करता है।[1] धर्म संस्कृति का एक आवश्यक अंग है। किसी भी राष्ट्र या जाति की संस्कृति में धर्म, दर्शन, इतिहास एवं रीति-रिवाज आदि परम्पराओं का होना आवश्यक है। ये परम्पराएँ ही धीरे-धीरे विकसित और दृढ़मूल होकर संस्कृति के रूप में परिणत हो जाती हैं। संस्कृति के विकास में भौगोलिक परिस्थिति, जलवायु, लोगों की आजीविका इत्यादि का बहुत प्रभाव पड़ता है।

## आर्यसंस्कृति

आर्यसंस्कृति का मूलाधार वेद है, इसलिए इसे वैदिक संस्कृति भी कह सकते हैं। वेद परमात्मा की वाणी है जो कि सृष्टि के आदि में चार ऋषियों के हृदयों में प्रकट हुई। इसलिए वैदिक संस्कृति सबसे प्रथम (प्राचीन) और सबके लिए वरणीय है।[2]

इस संस्कृति के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। आयु को १०० वर्ष मानकर इसे चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। प्रारम्भ के २५ वर्षों में ब्रह्मचर्य आश्रम, २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थ-आश्रम, ५० से ७५ वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ-आश्रम और ७५ वर्ष से आगे संन्यास-आश्रम का विधान प्रत्येक द्विज के लिए किया गया है। संक्षेप में निम्न सूत्र से इसका रहस्य समझा जा सकता है।

**धर्म (अर्थ + काम) = मोक्ष**

अर्थात् ब्रह्मचर्य-आश्रम में धर्म, कर्त्तव्यपालन, यम-नियमों का अभ्यास एवं विद्याध्ययन करके गृहस्थ-आश्रम में जाने की अनुमति दी जाती थी। वहाँ धर्म के अनुसार अर्थ (धन) का उपार्जन, और मर्यादा में रहकर उसका उपभोग, सांसारिक व्यवहार और राष्ट्र के लिए उत्तम सन्तान का निर्माण करने का विधान किया है। जब ५०-५५ वर्ष की आयु, और लड़के के भी लड़का उत्पन्न हो जाए तब गृहस्थ

---

१. The Aim of the culture is perfection and religion helps to attain that perfection. - arnold

२. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। —यजु:० ७।१४

का भार पुत्र को सौंपकर वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करे। गृहस्थ में आई न्यूनता की तप, संयम, सत्संग-स्वाध्याय द्वारा पूर्ति करे। विद्यालयों में केवल आवश्यकतानुसार रोटी, कपड़ा लेकर निश्शुल्क विद्या पढ़ाये या अन्य सामाजिक कार्यों को अवैतनिक करे। साथ ही योगाभ्यास भी करता रहे। पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण—इन तीनों ऋणों से मुक्त होकर सभी कर्त्तव्य-कर्मों से मुक्त होकर चतुर्थ आश्रम संन्यास को ग्रहण कर ईश्वर की भक्ति, योगाभ्यास में तल्लीन रहे और जगत् के उपकारार्थ सर्वत्र भ्रमण, उपदेश करता रहे तथा अन्तिम लक्ष्य मुक्ति की प्राप्ति करके जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने का प्रयत्न करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसंस्कृति में इस लोक और परलोक दोनों की सिद्धि के लिए विधान किया गया है।

वैदिक संस्कृति यज्ञप्रधान है। यज्ञ शब्द संस्कृत की 'यज' धातु से बना है, जिसका अर्थ देवपूजा, संगतिकरण और दान है। प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म को यज्ञ कहा जा सकता है। अपने स्वार्थ का परित्याग करके परोपकारार्थ अपनी प्रिय वस्तु का समर्पण करना यज्ञ है। यज्ञ से व्यक्ति में दिव्य गुणों की वृद्धि होकर स्वर्ग (सुख विशेष) की प्राप्ति होती है। मनु महाराज ने इसीलिए प्रत्येक गृहस्थी के लिए ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ का विधान किया है। जब तक आर्यावर्त में यज्ञ होते रहे तब तक समय-समय पर वृष्टि, जलवायु की शुद्धि, पर्यावरण की शुद्धता, ज्ञान-विधान की वृद्धि और रोगों से मुक्ति हो सर्वांगीण उन्नति होती रही।

इस संस्कृति में समस्त धन को परमेश्वर का मानकर ही उपभोग करने का आदेश दिया है—

**ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।**

—यजु:० ४०।१

हे मनुष्य ! इस चराचर जगत् में जो कुछ भी है उसमें सर्वत्र परमेश्वर विद्यमान है। इसलिए उस परमेश्वर के दिये हुए पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग कर। किसी पराये के धन की कामना मत कर। **'कस्य स्विद् धनम्'** का अभिप्राय है कि यह धन कस्य (प्रजापति) का है। अथवा यह धन किसका है? किसी का भी

नहीं। केवल परमेश्वर प्रदत्त है। परमेश्वर का होने से उसे त्यागपूर्वक भोगना और दूसरे के धन का लालच न करना ही अभिप्रेत है। इस मन्त्र में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कही गई है कि जब सब धन परमेश्वर का है तो उसे धरोहर समझकर परमेश्वर की प्रजा हेतु अच्छे कार्यों में दान करना चाहिए। ऋग्वेद में दान की प्रशंसा की गई है। उदाहरण के लिए एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जाता है—

**मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।**

**नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।।**

—ऋग्वेद

इसका तात्पर्य यह है कि जो अपने ही स्वार्थ या उदरपूर्ति में लगा रहता है, अच्छे कार्यों में दान नहीं देता वह केवल पाप का ही भोजन करता है, अर्थात् पापी है।

यह संस्कृति इतनी उदात्त है कि इसे स्वीकार करने में किसी भी धर्म, सम्प्रदाय के अनुयायी को किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। **'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'** में सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। यह आदर्श किसे अच्छा नहीं लगेगा? 'मनुर्भव' मनुष्य बन। इस बात से कौन इन्कार करेगा? इस संस्कृति में जाति, धर्म, सम्प्रदाय और देशविशेष की बात न कहकर समस्त संसार के मनुष्यों को एक इकाई मानकर रहने का मार्ग प्रदर्शित किया है। ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त, जिसे संगठनसूक्त भी कहते हैं, इसका विशद विवेचन करता है। यथा— "हे मनुष्यो ! तुम सब मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम्हारा चिन्तन एक हो।"

तुम्हारे खान-पानादि के स्थान एक हों, जैसे नाभि में अरे लगे रहते हैं, जैसे ऋत्विज् और यजमान सब मिलकर यज्ञादि का अनुष्टान करते हैं वैसे ही तुम सब धर्मयुक्त कर्मों को तथा एक-दूसरे का हित साधन मिलकर किया करो (अथर्व० ३।३०।६)।

मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को संस्कृत करने के लिए वैदिक संस्कृति में सोलह संस्कारों का प्रावधान किया है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, गुणों की अभिवृद्धि करना संस्कार कहलाता है। जब बालक गर्भ में आता है उस समय से जन्म लेने तक चार संस्कारों द्वारा भावी शिशु को स्वस्थ, सुरूप एवं

बुद्धिमान् बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इसी भाँति आगे के संस्कार भी उसे उन्नति की ओर अग्रसर करने के लिए किये जाते हैं। संस्कारों द्वारा संस्कृत होकर ही मानव शूद्रभाव से पृथक होकर द्विज बनता है। स्वाध्याय, जप, हवन, ज्ञान, कर्म, उपासना, योग्य सन्तान उत्पन्न करने, पञ्च महायज्ञ और यज्ञों के द्वारा ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म परमेश्वर को जानने योग्य शरीर का निर्माण किया जाता है।

## अन्य संस्कृतियों से तुलना

इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी समय यूनान, रोम, मिस्रादि सभ्यता एवं संस्कृति के केन्द्र थे, किन्तु इस्लाम की प्रचण्ड आँधी ने उन्हें धराशायी कर दिया। यह आँधी अरबदेश से उठकर मार्ग में आनेवाले अनेक राष्ट्र एवं संस्कृतियों को पददलित करती हुई भारत में भी आई, परन्तु इस देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इतनी सुदृढ़ तथा सुसंगठित थी कि धार्मिक उन्माद एवं उत्पीड़न की आँधी कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी। उर्दू के एक कवि हाली को लिखना पड़ा—

**वो दीने हिजाजी का बेबाक बेड़ा,**
**निशाँ जिसका अकसाये आलम में पहुँचा।**
**मुज़ाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका,**
**न उम्माँ में ठठका न कुल्जम में झझका।।**
**किये पैसिपुर जिसने सातों समुन्दर,**
**वो डूबा दहाने में गंगा के आकर।।**

अर्थात् जिस इस्लाम ने तलवार के बल पर अनेक देश-देशान्तरों को रौंदते हुए वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति का नामोनिशाँ मिटा दिया, वह गंगा के दहाने में आकर डूब गया। सात-सौ वर्ष तक हमपर अत्याचार होते रहे। हमारे पूर्वजों ने अपनी गर्दनें कटवाना स्वीकार किया, शत्रु से लोहा लेते हुए शहीद हो गये, परन्तु उनकी संस्कृति को स्वीकार नहीं किया। इसके पीछे हमारी संस्कृति का सुदृढ़ आधार ही कारण है। जहाँ अन्य संस्कृतियों के अनुयायी सत्ता-प्राप्ति के लिए पुत्र, भाई एवं पिता को भी जेल में डाल या उनका वध करते रहे, वहाँ आर्य-संस्कृति के उन्नायक श्रीराम और भरत राजसिंहासन को गेंद के समान 'मुझे यह गद्दी नहीं चाहिए' यह कहकर ठुकराते रहे। पर-स्त्री को माता के समान समझनेवाले वीर

लक्ष्मण, अर्जुन, शिवाजी और दुर्गादास वे नर-रत्न हैं जिनकी दीप्ति कभी भी मन्द नहीं होगी। सीता, सावित्री, दमयन्ती जैसी साध्वी, महारानी दुर्गा और लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं। ब्रह्मचर्य के धनी हनुमान, भीष्म पितामह, शंकराचार्य और महर्षि दयानन्दजी अपनी यशःकीर्ति से आज भी देदीप्यमान हो रहे हैं। ये महामानव आर्यसंस्कृति की छत्रछाया में फूले-फले हैं।

आज की पाश्चात्य संस्कृति में धर्म और मोक्ष का परित्याग करके केवल अर्थ और काम ही रह गये हैं। यह आसुरी संस्कृति कही जा सकती है। रावण ने सीता को प्रलोभन देते हुए यही तो कहा था—

**यथाकामं भुङ्क्ष्व भोगान् पिब भीरु रमस्व च।**

हे सीते ! मेरी पटरानी बनकर इस सोने की लङ्का में अपनी रुचि के अनुसार भोगों को भोग, हृदय को आह्लादित करनेवाले पेय (मद्यादि) का पान करो और हाथी, घोड़े, पुष्पक यानादि में बैठकर जहाँ इच्छा हो भ्रमण करो।

(Eat, drink and be merry) अर्थात् खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ यही सब-कुछ तो रावण ने सीता को कहा था। कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। कहाँ कर्त्तव्यपालन, संयम, सदाचार, 'मातृवत्परदारेषु' का भाव और कहाँ मर्यादाओं का अतिक्रमण करके केवल भोग भोगने के विविध साधनों का संग्रह, दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

# ९. आर्यजाति, उत्थान एवं पतन

मूलरूप में आर्यशब्द, जातिवाचक न होकर गुणवाचक है। श्रेष्ठ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी, पुरुषार्थी व्यक्ति का नाम आर्य और इतर का नाम अनार्य या दस्यु वेद में कहा गया है। जिनके जीवन में व्रत, सत्यभाषणादि हों उन्हें ही आर्य कहते हैं। संसार में भले और बुरे दो ही प्रकार के मनुष्य होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने आर्यजाति के लक्षण—रंग गोरा, कद लम्बा, नाक लम्बी इत्यादि दिये हैं तथा ये लोग मध्य एशिया से आये ऐसा उल्लेख किया है। उनका यह कथन प्रमाणों के अभाव में सर्वथा विपरीत है। सृष्टि की उत्पत्ति सबसे पहले त्रिविष्टप (तिब्बत) में हुई, क्योंकि यही स्थान सृष्टि की उत्पत्ति के लिए सबसे अनुकूल था। वहाँ स्थानाभाव होने के कारण कालान्तर में आर्यलोग हिमालय से नीचे उतरे और गंगा, यमुना, सिन्धु आदि नदियों से सिञ्चित समतल भूमि में बसते हुए धीरे-धीरे सारे आर्यावर्त्त देश में फैल गये। इनके आने से पहले इस देश में कोई अन्य जाति नहीं बसती थी। आर्यों द्वारा इसे बसाये जाने के कारण ही इस देश को आर्यावर्त्त कहते हैं। इन्हीं की दूसरी शाखा यूरोप के देशों की ओर गई।

इसकी उन्नति के निम्नलिखित कारण थे—

## १. वर्ण-व्यवस्था

पहले ब्रह्म (परमेश्वर) से उत्पन्न अमैथुनी सृष्टि का नाम 'ब्राह्मी सृष्टि' था। उस समय केवल एक ही वर्ण 'ब्राह्मण वर्ण' का अस्तित्व था। जब समाज का कार्य नहीं चला तो ब्राह्मण वर्ण ने अपने में से क्षात्र वर्ण को पृथक् किया जिसका कार्य अन्याय का निवारण और राजकार्य को सँभालना निश्चित किया। इतने में भी जब समाज का कार्य भली-भाँति नहीं चला तब ब्राह्मण वर्ण में से तीसरे वर्ण 'वैश्य वर्ण' की स्थापना की गई, जिन्हें कृषि, गोपालन और उद्योग व व्यापार का कार्य सौंपा गया। इतने से भी जब समाज का कार्य नहीं चला तब ब्राह्मण वर्ण से ही चतुर्थ 'शूद्र वर्ण' का निर्माण किया गया, इसका कार्य परिश्रम के कार्य करना, तीनों वर्णों का सहयोग एवं समाजसेवा निश्चित किया गया। जैसे पृथिवी सब

प्राणियों का पोषण करने से 'पूषा' कहलाती है, वैसे ही सब प्राणियों को सेवा महयोगादि द्वारा पोषण करने से चौथे वर्ण का नाम 'पूषा' प्रसिद्ध हुआ। ये चारों वर्ण ब्राह्मण वर्ण से ही उत्पन्न होने के कारण इनमें परस्पर कोई ऊँच-नीच का भाव नहीं था।[1] इनका विभाग केवल समाज के विभिन्न कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार किया गया था, जिसमें जन्म का कोई महत्त्व नहीं था।

समाज के कार्यों का पृथक्-पृथक् निर्धारण करने से सर्वत्र सुखैश्वर्यों की वृद्धि हुई। महाभारत के काल तक आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य रहा। मैत्र्युपनिषद् में सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्रयश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीश, ननक्तु, सर्याति, ययाति, इन्द्रद्युम्न, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत् और भरत इत्यादि चक्रवर्ती सम्राटों के नाम आये हैं।

## २. सुदृढ़ संस्कृति

किसी भी जाति को प्रेरणा उसकी संस्कृति से ही मिलती है। आर्यों की संस्कृति वेद पर आधारित संस्कृति है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र एवं योगेश्वर श्रीकृष्णजी इस संस्कृति के आकाश में सूर्य और चन्द्रमा के समान देदीप्यमान रत्न हैं। जिनके जीवन से आर्यजाति आज भी अनुप्राणित हो रही है।

## ३. वैदिक धर्म

धर्म व्यक्ति की अन्तरात्मा को कर्त्तव्य पथ पर चलने के लिए निरन्तर अनुप्राणित करता रहता है। आर्यों का धर्म वैदिक धर्म है। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** (मनु) धर्म का ज्ञान वेदों द्वारा ही किया जा सकता है। जब तक वेद का पठन-पाठन, उपदेशादि आर्यावर्त्त देश में रहा तब तक आर्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को जानकर सुख-शान्ति और समृद्धि से युक्त रहते रहे।

---

१. (क) वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। —ऋ० १।५१।८

(ख) ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत्।
तच्छ्रेयोरूपमसृजत् क्षत्रम्।। —बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।११

(ग) न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्।। —महा० शान्तिपर्व ११८।१०

## ४. एक ईश्वर

ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और जीवों को पुण्य-पापरूप कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फलों को देनेवाला है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, नित्य और निराकार है।[1] उसकी कोई मूर्ति नहीं बन सकती।[2] उसका मुख्य नाम ओ३म् है।[3] गुण-कर्मों के अनुसार उसे बहुत नामों से पुकारा जाता है।[4] उसके समान अन्य कोई नहीं हो सकता। किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।[5] कर्मफल को अन्यथा करना ईश्वर के भी वश में नहीं है। वेद उसकी वाणी है जो चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई। एक धर्म तथा एक ईश्वर को मानने से परस्पर मतभेद न होकर समान उद्देश्य के लिए पुरुषार्थ करने की प्रवृत्ति बनी रही।

## ५. पुरुषार्थ

वेदों में सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने का उपदेश दिया है।[6] पुरुषार्थ से धन-प्राप्ति के अनेक मन्त्र हैं जिनमें से कुछ का भावार्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है। हे मनुष्यो ! तुम दुग्धादि रसों का पान करके तृप्त हो जाओ, आगे बढ़ो और धनों को धारण करो।[7] बिना पुरुषार्थ किये देवता मित्र नहीं बनते।[8] 'श्रम के बिना श्री की प्राप्ति नहीं हो सकती।' 'आलसी मनुष्य पापी होता है।' देवता यज्ञ करनेवालों की इच्छा करते हैं, आलसी मनुष्य को वे नहीं चाहते।[9] पुरुषार्थ न करनेवाला दस्यु (डाकू) है।[10]

---

१. अधिक ज्ञानार्थ देखिए आर्यसमाज का दूसरा नियम।

२. **न तस्य प्रतिमा अस्ति।** —यजु:०

३. **ओ३म् क्रतो स्मर, ओ३म् खम् ब्रह्म, ओ३म् प्रतिष्ठ।।** —यजु:०

४. **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।**

५. **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**

६. **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।** —यजु:० ४० ।२

७. **पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।** —ऋ:० ८ ।३५ ।१०

८. (क) **न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।** —ऋ:० ४ ।३३ ।११

(ख) **नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति। पापो नृषद्वरो जनः।** —ऐतरेय ब्रा० ३३ ।३

९. **इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्।** —ऋ:० १० ।१५५ ।३

१०. **अकर्मा दस्युः।** —ऋग्वेद

जब तक पुरुषार्थ करके धनैश्वर्य एवं अन्य सुखोपभोग के साधन प्राप्त करने की प्रवृत्ति बनी रही तब तक आर्यावर्त्त देश धन-सम्पत्ति से सदा समृद्ध रहा। स्त्री-पुरुष सभी स्वर्ण के आभूषण पहनते थे। पशुधन के अधिक होने से घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। यह देश सोने की चिड़िया कहलाता था।

## ६. राज्य वृद्धि

वर्तमान समय में आर्यजाति के अबोध बालको को यह भ्रमित इतिहास पढ़ाया जाता है कि हमने किसी पड़ोसी देश पर आधिपत्य किया ही नहीं, यहाँ कभी एक व्यक्ति का समस्त देश पर राज्य रहा ही नहीं और इस देश के लोगों ने मिलकर रहना सीखा ही नहीं इत्यादि। परन्तु ये सारी कपोलकल्पनाएँ हैं। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि सृष्टि के आदि से महाभारत के युद्ध तक आर्यों का सारे भू-मण्डल पर चक्रवर्ती साम्राज्य रहा है।

यहाँ के राजा, महाराजा राज्य की वृद्धि के लिए राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किया करते थे। महाभारत के युद्ध में समस्त भूमण्डल के राजाओं ने भाग लिया था। यदि वहाँ आर्यों का राज्य नहीं था तो वे राजा लोग युद्ध में भाग लेने क्यों आते ? इसी भाँति युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ करने पर देश-विदेश के राजा भेंट लेकर उपस्थित हुए थे।

## ७. राष्ट्र प्रेम

मातृभूमि एवं राष्ट्रीयता शब्द आर्यों के लिए नये नहीं हैं। अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त सुप्रसिद्ध है, जिसमें भूमि को माता कहकर सम्बोधित किया गया है।[1] राष्ट्ररक्षा के उपायों का चिन्तन समाज का बुद्धिजीवी वर्ग करता रहता था।

## ८. स्त्री-शिक्षा

वेदकालीन समाज में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्हें अर्धांगिनी कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार पत्नी, पुरुष का आधा शरीर होती है।[2] पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी विद्या, यज्ञकर्म, शिल्पकला, गणित, आयुर्वेद तथा अन्य

---

१. माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

२. अर्धो वा एव आत्मनः यत् पत्नी। —तै० सं० ६।१।८

ज्ञान-विज्ञान का शिक्षण प्राप्त करती थीं। विद्या समाप्त करके युवावस्था में स्वयंवर विधि से विवाह करके गृहस्थ आश्रम में उत्तम सन्तानों का निर्माण मातृशक्ति द्वारा किया जाता था। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, महारानी मदालसा जैसी देवियाँ स्त्रियों में भूषणरूप हैं। सीता, सावित्री का पतिव्रत धर्म, कैकेयी का युद्धभूमि में महाराजा दशरथ की सहायता करना, रानी झाँसी, रानी दुर्गावती का शत्रुसैन्य पर टूट पड़ना, स्त्री-शिक्षा के महत्त्व को प्रकट करता है। मनु महाराज कहते हैं "जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।"[1]

## ९. अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान

**'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते'** इस श्रुति के अनुसार आर्यजाति में शस्त्रास्त्र सम्बन्धी विज्ञान चरमसीमा तक पहुँच गया था। आजकल के अणु-आयुधों-जैसे अस्त्रों का वर्णन वेद, रामायण एवं महाभारत में मिलता है। जब तक इनका वर्चस्व रहा आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य समस्त पृथिवी पर बना रहा।

## १०. यज्ञ

आर्य संस्कृति का मूलस्तम्भ यज्ञ ही है। सभी गृहस्थ आश्रमी एवं राजा लोग बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, जिनसे गायनविद्या, शिल्पविद्या, व्यावहारिक धर्म, व्यापार इत्यादि की अभिवृद्धि हुई। धीरे-धीरे इसने उत्सवों का रूप ले-लिया, जिनमें, दूर-दूर से लोग सम्मिलित होने लगे। परस्पर विचार-विमर्श होने से ज्ञान-विज्ञान और एकता के भाव जाग्रत हुए। यहाँ यह पौराणिक कथा उपयुक्त जान पड़ती है कि असुरों से परास्त होकर देवों ने उनसे केवल यज्ञ करने के लिए कुछ भूमि माँगी। उनके स्वीकार करने पर देवों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिये। जहाँ-जहाँ यज्ञ होने लगे वहाँ से असुर हटने लगे। इसी भाँति यज्ञ के द्वारा देवों का सारी पृथिवी पर फिर से आधिपत्य हो गया। वस्तुतः यज्ञ संगठन का प्रतीक है, जिसमें सबकि उन्नति के उपायों पर विचार किया जाता है। परस्पर प्रेमभाव, वेदचर्चा और मिलकर कार्य करने की प्रवृत्ति का उदय होता है।

---

१. **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।** —मनुस्मृति

## १. महाभारत का युद्ध

महाराजा इक्ष्वाकु से लेकर युधिष्ठिर तक आर्यों का समस्त भूमण्डल पर साम्राज्य रहा। महाराज युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में देश-विदेश के अनेक माण्डलिक राजा विविध भेंट लेकर उपस्थित हुए थे, परन्तु महाभारत के युद्ध ने आर्यजाति को अवनति के गर्त में ऐसा धकेला कि अब तक नहीं उभर पायी है। जब भाई बड़े-बड़े योद्धा, वैज्ञानिक, विद्वान् सभी इस वैराग्नि में स्वाहा हो गये। जब भाई ही भाई के रक्त का प्यासा हो जाए तो इसका लाभ उठाकर तीसरी शक्ति सत्ता सँभाल लेती है। महाभारत युद्ध के पश्चात् आर्यजाति इतनी निष्प्राण हो गई कि बाद में विदेशी आक्रान्ताओं के सामने उसे घुटने टिकाने ही पड़े। जैसे सूर्यास्त हो जाने पर कुछ दिखलाई नहीं देता और जुगनू या दीपक को आश्रय मानकर ही लोग अन्धकार में रास्ता ढूँढने का प्रयत्न करते हैं, वैसे ही वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों के न रहने से वैदिक धर्म का लोप हुआ और अनेक मिथ्या मत-मतान्तर, अन्धविश्वास तथा अन्य कुरीतियाँ प्रचलित हो गईं जिनमें से कुछ का प्रसंगानुसार वर्णन उचित होगा।

## २. जन्म से वर्ण-व्यवस्था

यह पहले ही कहा जा चुका है कि समाज के कार्यों को ठीक प्रकार से चलाने के लिए ब्राह्मण वर्ण से ही अन्य तीन वर्णों का निर्माण गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार किया गया, परन्तु बाद में इसका स्थान (योग्यता के स्थान पर) जन्म ने ले लिया। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि पहले ब्राह्मणादि का पद विद्या, वेदाभ्यास, विनम्रतादि सद्गुणों से प्राप्त होता था वह अनायास ही मिल जाने से विद्यादि में होनेवाला परिश्रम छूट गया और समाज के मूर्धन्य मार्गदर्शक ब्राह्मण-वर्ण का कार्य अपने को उच्च तथा अन्य वर्णों को योग्य होने पर भी नीच बनाना ही रह गया। वेदों का पठन-पाठन केवल ब्राह्मणों तक सीमित हो गया। "**स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्**" स्त्री और शूद्र वेद नहीं पढ़े, ऐसी घोषणा सबमें ब्रह्मभाव माननेवाले स्वामी शंकराचार्य द्वारा की गई। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बहुसंख्य वर्ग वेदज्ञान से शून्य होकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य से विमूढ़ हो गया। ऐसी स्थिति में तथाकथित

धर्म के ठेकेदारों की बन आई और उन्होंने स्वार्थसिद्धि के लिए अनेक मिथ्या आडम्बर, मत मतान्तर वेद के नाम से स्थापित कर दिये।

## ३. बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव

आर्यजाति के लिए वह दिन सबसे दुर्भाग्यपूर्ण था जब सम्राट अशोक ने क्षात्रधर्म का परित्याग करके बौद्ध धर्म स्वीकार किया। अपने बाहुबल से उसने पूर्व में बंगाल, दक्षिण में गोदावरी नदी पश्चिम में सिन्धु और उत्तर में हिमालय तक राज्य का विस्तार किया। उसने अन्तिम आक्रमण कलिंग (उड़ीसा) देश पर किया और लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। इस क्रूरता से उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। अहिंसा का बेसुरा राग अलापा जाने लगा। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को देश-विदेश में भिजवाया। 'यथा राजा, तथा प्रजा' इस लोकोक्ति के अनुसार प्रजा भी अपने क्षात्रधर्म को त्यागकर बौद्धमत की अनुयायी बनने लगी। क्षत्रिय नवयुवक, क्षात्रधर्म एवं गृहस्थ का उत्तरदायित्व छोड़ मूंड-मुँडाकर बौद्ध भिक्षु बनने लगे। इसके दुष्परिणामस्वरूप अशोक के समय में ही उसका विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अशोक के पश्चात् कनिष्क ने बौद्ध मत स्वीकार कर लिया। तब से लेकर अब तक अहिंसा का यह रोग जाति की रगों में इतना गहरा बैठ गया कि किसी भी उपचार से इसपर नियन्त्रण करना कठिन है।

## ४. मूर्तिपूजा

जैनमत व बौद्धमत से मूर्तिपूजा का प्रारम्भ हुआ। उनका अनुकरण करके वेदज्ञान से शून्य स्वार्थी, धर्म के ठेकेदार लोगों ने निराकार परमेश्वर के विभिन्न अवतार तथा देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मन्दिर बनवाकर स्थापित करवाई। आगे जाकर इन मन्दिर-मठों में इतना धन एकत्र हो गया कि विदेशी आक्रमणकारियों ने इन्हें लूटने के लिए अनेक बार चढ़ाइयाँ कीं। गजनी देश के लुटेरे आक्रान्ता महमूद ने नगरकोट (कांगड़ा) के मन्दिर को लूटकर अथाह धन-सम्पत्ति प्राप्त की। अनुमानतः ६-७ सौ मन सोना लूटा गया। एक चाँदी का मकान भी मिला। इससे उत्साहित होकर उसने थानेश्वर एवं मथुरा के देवालयों पर आक्रमण किया। इसी

प्रकार १६ बार लूटमार की। उसका अन्तिम आक्रमण सोमनाथ (गुजरात) मन्दिर पर हुआ। आक्रमण की सूचना पाकर स्थानीय क्षत्रिय योद्धा एवं राजपूत राजाओं ने मन्दिर की रक्षा करने का प्रस्ताव किया, किन्तु पण्डे-पुजारियों ने कहा कि चिन्ता करने की कोई बात नहीं, सोमनाथ भगवान् स्वयं अपनी रक्षा एवं म्लेच्छों का मानमर्दन कर देंगे। महमूद गजनवी गाजर-मूली की भाँति ५० हजार लोगों को काटता हुआ असंख्य धनराशि, हीरे-जवाहरात ले गया। सोमनाथ की मूर्ति को तोड़कर उसे गजनी की मस्जिद की सीढ़ियों पर लगवाया। इसके पश्चात् के आक्रमणकारियों के लिए भी मूर्तिभञ्जन और मन्दिरों में एकत्रित धन-सम्पत्ति लूटना ही मुख्य आकर्षण रहे। मूर्तिपूजा परमात्मा-प्राप्ति की सीढ़ी न होकर वह भयकंर खाई सिद्ध हुई जिससे अब तक हम निकल नहीं पाये हैं।

## ५. शंकराचार्य का मायावाद

महात्मा बुद्ध के पश्चात् शंकराचार्य ने अथक परिश्रम करके पुनः वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु बुद्ध के 'सर्वं दुःखम्' और शून्यवाद के स्थान पर 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' और प्रत्येक दृश्य वस्तु को माया बतलाकर आर्यजाति को संसार से ही विमुख कर दिया। अब धर्म का सामाजिक स्वरूप न रहकर प्रत्येक को जगन्मिथ्या के ज्वर ने दबा लिया। बौद्धमत के समान शंकराचार्य की भी बहुत प्रतिष्टा होने से उसके अनुयायी धड़ाधड़ संसार का परित्याग करके संन्यासी बनने लगे जोकि सभी कर्त्तव्य-कर्मों से विमुख होकर देश पर भार सिद्ध हुए। आज इनकी संख्या ५० लाख बताई जाती है। यदि आज भारत के साधु-सन्यासी मिलकर विद्या, सुशिक्षा, धर्म एवं राष्ट्रियता का कार्य करें तो देश का कायाकल्प होते देर न लगेगी।

## ६. फलित ज्योतिष

इस मिथ्या अन्धविश्वास ने आर्यजाति की अकथनीय क्षति की है। शत्रु द्वारा आक्रमण करने पर मुहूर्त देखना, सामने बिल्ली, कौआ, कुत्ता, गीदड़ आ जाए या बोले तो अपशकुन मानना, देवी-देवताओं की प्रसन्नता या नाराजगी पर विश्वास करना और भविष्यपुराण की बातों को सत्य मानकर कर्त्तव्य-विमुख हो जाना इत्यादि बहुत-से कारण हैं जिनसे ग्रस्त होकर देशवासी पुरुषार्थ को छोड़

भाग्यवादी बन बैठे हैं। इसका एक उदाहरण देना उचित होगा। मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध के राजा दाहिर पर आक्रमण किया। दाहिर ने शूरवीरता से उसका मुकाबला किया। जब दाहिर की विजय होनेवाली थी तभी एक घटना ने पासा पलट दिया। हुआ यह कि मुहम्मद-बिन-कासिम को किसी घर के भेदी ने यह बताया कि हिन्दु सैनिकों से पण्डे लोगों ने यह कहा हुआ है कि जब तक इस सामनेवाली मन्दिर की ध्वजा फहरा रही है तब तक देवी तुमपर प्रसन्न रहेगी और तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती। इस भेद को जानकर मुहम्मद-बिन-कासिम ने मन्दिर को लक्ष्य बना तोप का गोला मारकर पताका को गिरा दिया और हिन्दु सैनिक देवी को अप्रसन्न जानकर जीती हुई बाजी छोड़कर मैदान से भाग निकले। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त भविष्यपुराण में लिखा है कि कलियुग में म्लेच्छ लोगों का राज्य होगा। इन सब अन्धविश्वासों में फँसकर पराजय का समय जान वीर क्षत्रिय अपने कर्त्तव्य-कर्म से विमुख हो बैठे। उन्होंने वेद के इस प्रेरक वाक्य "**कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः**" अर्थात् मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ और बायें हाथ में विजय है, को भुला दिया।

## ७. छुआछूत

जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने के कारण समाज के परिश्रमी वर्ग शूद्र को अस्पृश्य माना जाने लगा। स्त्रियों के लिए भी शिक्षा के द्वार बन्द हो गये। एक जाति की अनेक उपजातियाँ बन गईं, जिनमें से कुछ अपने को उच्च तथा अन्यों को नीच मानती थीं। किसी कवि का यह कथन उनपर पूर्ण चरितार्थ होता है—

**ज्यों कदली के पात पात में पात।**
**ज्यों गप्पी की बात बात में बात।**
**ज्यों गधे की लात लात में लात।**
**त्यों हिन्दुओं की जात जात में जात।**

कहते हैं कनवाहा के युद्ध में **बाबर** भयभीत होकर वापस लौटनेवाला ही था कि रात को उसने देखा कि **राणा सांगा** की सेना में स्थान-स्थान पर चूल्हे जल रहे हैं। यह क्या है? पूछने पर गुप्तचरों ने बतलाया कि हिन्दु लोग दूसरी जाति के लोगों का छुआ हुआ भोजन नहीं खाते। इनकी एकता नारंगी की भाँति है जो

बाहर से एक दीखते हुए भी भीतर से विभक्त है। इस बात को सुनकर बाबर ने उसी समय आक्रमण करने की आज्ञा दी और विजयश्री का वरण किया।

## ८. समष्टि-धर्म का अभाव

वैदिक धर्म सामाजिक धर्म है, जिसमें मिलकर चलने, बोलने, विचार करने, खाने-पीने, धन-सम्पत्ति का उपभोग करने और राज्य प्राप्त करने के बहुत-से मन्त्र आये हैं, परन्तु महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य के दुःख एवं मायावाद ने धर्म को समष्टि से पृथक् कर दिया, परिणामस्वरूप व्यक्ति को अपनी मुक्ति की ही सूझने लगी। लड़ने का कार्य केवल क्षत्रियों का ही रह गया। जबकि शास्त्रों में यह स्पष्ट लिखा है कि राष्ट्र पर विपत्ति आने पर अन्य वर्णों को शस्त्र उठाने चाहिएँ। जनमानस में यह भावना घर कर गई कि **'कोऊ नृप होऊ हमें का हानि'** इसका बहुत दुष्प्रभाव हुआ, क्योंकि जब जनसाधारण में यह भ्रान्ति हो जाए कि 'दिल्ली का राज्य कोई करे हमें तो केवल कर ही देना है' तब विधर्मियों का प्रतिरोध कौन करेगा?

## ९. शुद्धि का अभाव

जन्म से जाति-पाति और छुआछूत के रोग ने आर्यजाति को इतना जर्जरित कर दिया कि अब तक नहीं सँभल पाई है। इसका लाभ मुसलमानों ने पर्याप्त उठाया है। उन्होंने भारतवर्ष की क्षत्रिय जातियों को प्रलोभन देकर या बलात् इस्लाम स्वीकार करने को बाध्य किया। कुओं में गोमांस डाल दिया गया। हमारे जो भाई किसी भी कारण से पतित हो गये, उनके लिए पुनः शुद्ध होने का द्वार बन्द हो जाने से वे अपमानित होकर दुगुने धार्मिक उन्माद से हिन्दुओं को मुसलमान बनाने लगे। बंगाल का काला पहाड़ जोकि पहले कालीचन्द्र शर्मा था, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अलाऊदीन खिलजी के लिए दक्षिण भारत की विजय करनेवाला मलिक काफूर पहले हिन्दु ही था। पाकिस्तान के जन्मदाता जिन्ना साहब की माता ब्राह्मणी थी। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं। समाज के अग्रणी ब्राह्मणवर्ग एवं तत्कालीन राजाओं को यह नहीं सूझा कि धर्म का सम्बन्ध बाह्य शरीर से कम तथा सूक्ष्म शरीर से अधिक है। जबरदस्ती किसी के मुँह में गोमांस ठूँसे जाने से ही कोई धर्मभ्रष्ट नहीं हो जाता। स्त्रियों के साथ बलात्कार करने से ही वे पतित नहीं हो जातीं जबकि शास्त्रों में यह विधान है कि स्त्री को रजोदर्शन के बाद और यदि बलात्कार के

फलस्वरूप गर्भ रह जाए तो उसकी उत्पत्ति के पश्चात् शुद्ध हो जाती है। सुनते हैं अकबर हिन्दु बननेवाला था परन्तु बीरबल ने मूर्खतापूर्ण उदाहरण देकर मना कर दिया। यह अक्षम्य अपराध था, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। विधर्मियों के मुख तथा पेट इतने बड़े हैं कि उनको सब हजम हो जाता है और हमारे हृदय इतने संकुचित तथा उदर इतना दुर्बल है कि अपने भाईयों को ही पुनः अपने में नहीं मिला पाते। यही क्रम बना रहा तो निकट भविष्य में आर्यजाति अल्प संख्यक हो जाएगी, इसमें सन्देह नहीं।

## १०. आपस की फूट

यह रोग भी महाभारत के समय से ही लगा हुआ है। कौरव-पाण्डवों की परस्पर कलह से भयंकर युद्ध हुआ। सुरापान से यादव परस्पर लड़कर मर गये। मौसेरा भाई होने पर भी जयचन्द ने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिये मुहम्मद गौरी को निमन्त्रण दिया। पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों और जाट राजा सूरजमल की नहीं बनी। राजा सूरजमल का छापामार युद्ध का प्रस्ताव ठुकराने पर वह रात में ही चुपचाप सेनासहित भरतपुर लौट गया। मराठों को महती क्षति उठानी पड़ी, अन्यथा भारतवर्ष का इतिहास कुछ और ही होता। इस बात की अनेक साक्षियाँ हैं कि परस्पर की फूट ने ही अधिकतर विदेशियों को विजय दिलवाई। "**इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से**"। इसके अतिरिक्त युद्धनीति का अभाव, असहिष्णु प्रवृत्ति, केवल उदरपूर्ति तथा स्वार्थ इत्यादि और भी अनेक कारण हैं जिनकी चर्चा कहाँ तक की जाए?

**नश्तर को लेकर हाथ में फ़स्साद ने कहा।**

**नस-नस में जख्म है लगाऊँ कहाँ-कहाँ।।**

अन्त में यह कहकर सन्तोष करना पड़ता है कि "**बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय**"।

# १०. आर्यसमाज

आर्यसमाज क्या कोई मत, सम्प्रदाय या देश-विदेश से सम्बन्धित संस्था है? इसका उत्तर देते हुए एक विचारक ने कहा कि आर्यसमाज न तो कोई मत है और न वाद में लिपटा हुआ सिद्धान्त। यह एक सुसंगठित, सुनियोजित, क्रान्तिकारी आन्दोलन है जिसका लक्ष्य विश्व के सभी मतों, वादों और मानव-मानव के बीच खड़ी भेद-भाव की दीवारों को समाप्त करना है। आर्यसमाज संसार में अन्याय और विज्ञान के खिलाफ वैचारिक क्रान्ति का मूलमन्त्र है, जिसका लक्ष्य मानवमात्र की उन्नति करना है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती स्वमन्तव्यामन्तव्य में कहते हैं—"मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।" इस तथ्य की पुष्टि अन्तिम पृष्ठ पर दिये गये आर्यसमाज के नियमों पर दृष्टिपात करने से होती है। इनमें पहले दो नियम ईश्वर के सम्बन्ध में हैं। ईश्वर सृष्टिकर्त्ता और वेदज्ञान का प्रकाशक है, उसी की उपासना करनी चाहिए।

तीसरे, चौथे और पाँचवें नियम में व्यक्तिगत जीवन की उन्नति के लिए वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सत्य का ग्रहण और प्रत्येक कार्य सत्यासत्य का विचार करके करने का विधान है। अन्तिम पाँच नियम सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रुप से चलाने के लिए हैं। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज के नियम व्यक्ति, समष्टि और परमसत्ता को साथ लेकर चलते हैं।

## आर्यसमाज के मन्तव्य

आर्यसमाज के मन्तव्य वेद पर आधारित हैं। जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

## १. एकेश्वर :

समस्त जगत् का उत्पादक, स्थापक और संहारक एक ईश्वर ही है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा या तीसरा अथवा अन्य कोई देवी-देवता उसका सहायक नहीं है। वह निराकार, सर्वशक्तिमान् है। जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही फल मिलेका, यह उसका अटल नियम है। जीवों के पुण्य-पाप का फल देने से वह न्यायकारी है।

## २. वेदः

वेद ईश्वर की वाणी है जो सृष्टि के आदि में मानवमात्र के लिए चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई। अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु को यजुर्वेद, आदित्य को सामवेद और अथर्वा अंगिरा को अथर्ववेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। इन चारों ऋषियों से ब्रह्मा ने वेद पढ़े और पुनः सर्वत्र वेद का पठन-पाठन प्रचलित हुआ। मानवमात्र के लिए समस्त ज्ञान-विज्ञान, विद्या और व्यवहार, धर्म-अधर्म, कर्त्तव्यादि का निर्देश वेद में दिया है। इनमें किसी देशविशेष या कालविशेष का नाम नहीं है। अन्य ऋषि लोगों ने इन मन्त्रों का साक्षात् करके उनका प्रचार किया इसी कारण आदरार्थ उन सूक्तों के द्रष्टारूप में उनका नाम आता है।

## ३. त्रैतवाद :

आर्यसमाज वेदानुसार ईश्वर, जीव व प्रकृति तीनों को नित्य मानता है। ईश्वर जीवों के कर्मफल का भोग देने तथा मुक्ति के लिए प्रकृति से सृष्टि की रचना करता है। प्रकृति जड़ होने से स्वयं जगद्रूप में प्रवृत नहीं हो सकती। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगनें में परतन्त्र है। अविद्या के कारण जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा हुआ जीव मुक्ति के साधन-शम, दम, विवेक, वैराग्य व योगाभ्यास द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

## ४. कर्मफल :

किये हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। ईश्वर का नाम लेने, क्षमा माँगने या तीर्थों पर भ्रमण करने से पाप क्षमा नहीं हो सकते। हाँ, प्रायश्चित करने और उन्हें आगे न करने का निश्चय करने से उनका और सञ्चय नहीं होगा।

जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल अवश्य ही मिलेगा।

## ५. पुनर्जन्म :

वृत्तियों के अनुसार कर्म और कर्मों से संस्कार बनते हैं संस्कारों का सूक्ष्म रूप वासना है। इन्ही वासनाओं के अनुसार जीव को अगला जन्म मिलता है। पुनर्जन्म पाकर वह जीव पहले के संस्कारों से प्रभावित होकर वैसे ही कर्म करता है और संस्कार, वासना, जन्म का चक्र चलता ही रहता है— जैसे रहट की माला में एक बाल्टी सामने आती है, उसमें भरा हुआ पानी गिरता है, पुनः दूसरी, तीसरी और फिर पहली इसी भाँति जब तक मोक्ष के साधनों से इस वृत्ति-कर्म-संस्कार के चक्र को तोड़ा नहीं जाए तब तक जीव जन्म-मरण के चक्र में पड़ा ही रहता है। कर्मफल के अनुसार जीव को विभिन्न योनियों में जाना पड़ता है। मुक्त होने पर भी वह निर्धारित समय तक मुक्ति-सुख का उपभोग करने के पश्चात् पुनः संसार में वापस आता है।

## ६. वर्णाश्रम व्यवस्था :

मानव जीवन को पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त्यर्थ चार आश्रमों में विभक्त किया हुआ है। विद्या, धर्म, शरीर, आत्मा और बौद्धिक विकास के लिए २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम, समस्त विद्या पढ़कर धर्मपूर्वक विवाह करके सांसारिक कार्यों के लिए २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम, पुत्र के भी पुत्र हो जाने पर ५० वर्ष के पश्चात् पुनः तप एवं विद्या की वृद्धि हेतु वानप्रस्थाश्रम और ७५ वर्ष से शेष आयुपर्यन्त संन्यास आश्रम का विधान किया है। इसी भाँति समाज के सभी कार्य सुचारु रूप में चलाने के लिए वर्ण निश्चित किये गये हैं इनमें विद्या पढ़ाना ब्राह्मण वर्ण का, राज्य कार्य क्षत्रिय का, कृषि, व्यापार एवं धनार्जन वैश्य का और सेवा का कार्य शूद्र का है। ये वर्ण जन्म से न होकर गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार गुरुकुलों में विद्याध्ययन के पश्चात् योग्यतानुसार निर्धारित किये जाते थे। प्रत्येक वर्ण को उन्नति करके उच्च वर्ण में आने का अधिकार है। आर्यसमाज इस वेद-शास्त्रोक्त सिद्धान्त में विश्वास रखता है।

## ७. स्त्री-शिक्षा :

परमात्मा की वाणी 'वेद' मानवमात्र के लिए है। उसे स्त्री, पुरुष सभी पढ़कर

तदनुसार आचरण कर सकते हैं। लड़कों के समान लड़कियाँ भी विद्या पढ़ने की अधिकारिणी हैं। बिना स्त्री शिक्षा के योग्य सन्तानों का निर्माण नहीं हो सकता। शंकराचार्य एवं बाद के अन्य आचार्यों का यह कथन कि स्त्री, शूद्र वेद नहीं पढ़ें, कपोलकल्पित है।

## ८. संस्कार :

गुणों की अभिवृद्धि करना ही संस्कार कहलाता है। बालक के गर्भ में आते ही उसकी पुष्टचर्थ गर्भाधान, पुंसवन, गर्भवती के स्वास्थ्य एवं मानसिक आरोग्यता के लिए सीमन्तोन्नयन, बच्चा उत्पन्न होने पर जातकर्म और पश्चात् नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा चूड़ाकर्म संस्कारों को किया जाता है। जब वह ५ या ८ वर्ष का हो जाए तो उपनयन संस्कार करके विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में प्रविष्ट करवा दिया जाता है। वहाँ गुरु उसका वेदारम्भ संस्कार करता है। पूर्ण विद्या पढ़ने के पश्चात् पुनः गृहस्थाश्रम की अनुमति प्रदान करता है। माता, पिता व सम्बन्धी घर आने पर योग्य कन्या के साथ सम्बन्ध निश्चित करके विवाह का उत्तरदायित्व पूर्ण करते हैं। गृहस्थ में वह विविध कर्त्तव्य कर्मों को धर्मपूर्वक करता हुआ पुत्रों को अपनी जिम्मेदारी देकर वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है, पुनः संन्यास का ग्रहण और मृत्यु के समय अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है। यही प्राचीन वैदिक प्रथा है। आर्यसमाज इन सोलह संस्कारों को मान्यता देता है।

## ९. शुद्धि :

**'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** सारे संसार को आर्य बनाओ। वेद के इस सन्देश के अनुसार जो लोग भूल से या बलपूर्वक विधर्मी बना लिये गये हैं, उन्हें पुनः वैदिक धर्म में लाना आर्यसमाज का दृढ़ संकल्प है। स्वामी श्रद्धानन्दजी के प्रयत्नों से लाखों मलकाने राजपूतों की आगरा-क्षेत्र में शुद्धि हुई। हरियाणा में मूले जाट, पञ्जाब में मेघ, ओड़ तथा रहमतिये शुद्ध किये गये। अब भी आदिवासी क्षेत्रों में शुद्धि का यह आन्दोलन चल रहा है।

## १०. राष्ट्रीय एकता :

आर्यसमाज का यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता एक नहीं होगी तब तक राष्ट्र में एकता, सुख-शान्ति और प्रगति नहीं हो

सकती।

इन मान्यताओं को आधार मानकर अपने प्रारम्भ काल में आर्य समाज ने स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य कार्य किये। धार्मिक क्षेत्र में मूर्ति-पूजा छुड़वाना, अवतारवाद का खण्डन, मृतक श्राद्ध, कब्रपूजा तथा तीर्थविशेष पर जाकर मुक्ति या पाप धुलने की भ्रान्त धारणाओं पर प्रबल कुठाराघात किया।

आर्यजाति में फैली बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, छुआछूत, भूत-प्रेत, अन्धविश्वास जैसी कुरीतियों का निवारण करने के लिए प्रचार अभियान चलाया।

स्त्री-जाति की शिक्षा के लिए कन्या पाठशाला और अनेक कन्या-गुरुकुल खोले गये।

स्वाधीनता संग्राम का शंखनाद सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द जी ने ही किया। उनके पश्चात पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा, पं० रामप्रसाद बिस्मिल, लाला लाजपतराय, सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी आर्यसमाज की ही देन है। काँग्रेस में भी ८० प्रतिशत आर्यसमाजी ही थे।

स्वदेशी वेष-भूषा, आचार, व्यवहार, हिन्दी भाषा एवं गोरक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का अपूर्व योगदान रहा।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज द्वारा सञ्चालित गुरुकुल, डी०ए०वी० विद्यालय, कन्या-पाठशालाएँ, अनाथाश्रम, विधवा-आश्रम, व्यायामशालाएँ, जिनकी वर्तमान संख्या सहस्रों में है, आज भी सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

जब भी देश पर संकट के बादल आये है। तो आर्यसमाज ने सबसे पहले सेवा, सुरक्षा और राहत केन्द्रों की स्थापना की है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आर्यसमाज राष्ट्र का सजग प्रहरी, वैदिक संस्कृति का रक्षक, वेदों का उद्धारक, स्त्री-जाति के समान अधिकारों का समर्थक, बिछुड़े भाइयों को गले लगानेवाला, मानवमात्र को समान समझकर उनसे उचित व्यवहार करनेवाला और प्रगतिशील संगठन है, जिसका द्वार सभी के लिए खुला हुआ है।